अन्तिम किसलय

लेखक
गोपीकान्त पंडित।

प्रकाशक
राजस्थान पुस्तक मन्दिर,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

प्रथमबार १०००] २६४८ [मूल्य १॥)

❀ विषय-सूची ❀

अंतर्दर्शन

कहानी साहित्य का प्राचीनतम रूप है और सबसे अर्वाचीन रूप भी, मानव में जब से वाणी का विकास हुआ तभी से कहानी का उद्भव भी समझना चाहिए, कुतूहल—आगे क्या होने वाला है ? फिर क्या हुआ ? यह जानने की भावना—मानव में आदि से ही प्रबल रही है। सुदूर प्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य गिरिकन्दरा निवासी बर्बर एवं असभ्य ही रहा होगा तभी से कुछ अनहोनी या अभूतपूर्व बात सुनने की उत्सुकता उसमें प्रबल रही होगी। हिंस्र पशुओं से उसे आए दिन संघर्ष करना पड़ता होगा, या भीषण अरण्य के घनघोर अंधकार में आँधी झड़ी के बीच उसे अपना मार्ग अन्वेषण करना पड़ता होगा। अपने छोटे से परिवार से सम्मिलित होने पर वह अपने अनुभवों का जो अकृत्रिम वर्णन करता होगा उससे श्रोताओं में कुतूहल के साथ साथ रोमांच, हर्ष, विकलता, भय, आदि भावनाओं का संचार होता होगा। समाज की इस सहानुभूति ने मानव को अपने या दूसरों के अनुभव सुनाने के लिए प्रेरणा दी। प्रारंभ में घटनाओं में सत्यता रहती होगी। पर ऐसी रोमांचकारी घटनाएँ प्रतिदिन तो घटती नहीं। अतः श्रोताओं के कुतूहल को बनाये रखने के लिए अपने प्रति उनकी सहानुभूति

को विशेष रूप में खींचने के लिये धीरे धीरे उसने अपने कथन का अतिरंजित करना, उसमें नमक मिर्च मिलाना प्रारंभ कर दिया। इसे हम साहित्यिक भाषा में यों कह सकते हैं कि उसने यथार्थ में कल्पना का भी पुट देना प्रारंभ कर दिया। कुतूहल जगाने में यथार्थ की अपेक्षा कल्पना विशेष समर्थ होती थी। अतः कल्पना ने यथार्थ के साम्राज्य को क्रमशः दबाते २ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार यथार्थ और कल्पना के मेल से प्रागैतिहासिक काल में कथा का जन्म हुआ होगा।

मानव समाज प्रिय है और कहानी कहने सुनने की प्रवृत्ति उसकी समाज प्रियता की सूचक है—साथ ही सामाजिक मनो-रंजन का एक स्वाभाविक साधन भी। जाड़ों की बड़ी रातें काटने के लिए अलाव के चतुर्दिक बैठे हुए बच्चों से नानी अब भी सात समुद्र पार की राजकुमारी या परियों की कहानी कहती हुई सुनी जाती है। लेखन कला के विकास के पूर्व नानी की ये ही राजकुमारियों और परियों या भूतों की कहानियां अथवा कवियों द्वारा गाई हुई वीर गाथाएँ ही हमें मुख परंपरा से प्राप्त होती हैं। सभी युगों में सभी देशों में जनता ने अति उत्सुकता से कथा-वाचक का स्वागत किया है। बालक से वृद्ध तक, सभ्य हो चाहे असभ्य सभी कथावाचक की कथा के जादू के वशीभूत हुए बिना नहीं रह सकते। कथा के प्रति एक विकल वासना से मानव सदा से अभिभूत रहा है। फलतः सभी देशों और कालों में कथा कहने सुनने की इस परंपरा में कभी व्याघात नहीं पहुचा।

अपने मूलरूप में कथा यथार्थ अथवा कल्पना द्वारा अतिरंजित वर्णनों द्वारा कुतूहल की अभिवृद्धि का मनोरंजन का साधन मात्र थी। सभ्यता के विकास के साथ साथ कथा का उपयोग भी बढ़ता गया और अब मनोरंजन क्रमशः कथा का उद्देश्य न रहकर साधन बन गया। विष्णु शर्मा ऐसे शिक्षा शास्त्रियों ने हितोपदेश और पंचतंत्र में 'कथाकुतूहल' से नटखट राजकुमारों को राजनीति और राजतंत्र का समस्त आवश्यक ज्ञान सिखा दिया। इस प्रकार नैतिक उपदेशों के लिए और आगे चलकर धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण को बढ़ाने के लिए दृष्टान्त रूप में कथा के माध्यम का सहारा बहुत पहले से ही लिया जाने लगा था। प्रत्येक देश की धार्मिक रचनाएँ कथाओं से भरी पड़ी हैं। हमारे देश का धार्मिक साहित्य ही संसार के साहित्य का एकमात्र प्राचीन उपलब्ध रूप है। वेद, उपनिषद्, वेदान्त आदि सारगर्भित और रोचक दृष्टान्तों से रहित नहीं है। रामायण और महाभारत भी प्रधान कथा के साथ दृष्टान्त रूप में आई हुई अनेक आख्यायिकाओं के भंडार हैं। बौद्धों के जातक ग्रन्थों में कथाओं के द्वारा ही जीवन के तथ्यों का उद्घाटन करते हुए दया और करुणा की नदियां बहाई गई हैं। कहानी के उक्त प्रकार में कौतूहल उत्पादन द्वारा मनोरंजन के साथ साथ मानव जीवन के तथ्यों का विश्लेषण कर नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का रोचक वर्णन है। पश्चिम भी इस प्रकार की कथाओं के लिए भारत का ऋणी रहा है। पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियां अरबी और यूनानी

भाषान्तरों द्वारा सारे यूरोप में फैल गई। ईसप की कहानियां इन्हीं का रूपान्तर मात्र है। ईसा मसीह ने बाइबल में जिन दृष्टान्तों का उपयोग किया है वे भगवान् बुद्ध द्वारा कही हुई अनेक कथाओं के समानान्तर हैं। सावित्री ने अपनी तर्कपूर्ण मधुर वाणी से सत्यवान् को यमराज के लौह हाथों से बचा लिया था। इसी कथा की छाया हमें यूनान की लोक कथा में मिलती है जिसमें हरक्यूलीज ने मृत्यु के पंजे से एलसेस्टिस को छुड़ाया है। आदिकवि वाल्मीकि के रामायण में वर्णित सीताहरण और लंका युद्ध की ही पुनरावृत्ति सी यूनान के प्रसिद्ध कवि होमर के 'इलियड' काव्य की नायिका हेलेन के अपहरण और ट्राय के युद्ध में प्रतीत होती है।

केवल कौतूहल-प्रधान कल्पना की पराकोटि पर पहुँची हुई कहानियों के लिए प्रायः अरब देश के अलिफ लैला या सहस्र-रजनी-चरित्र का नाम लोग ले लिया करते हैं। पर ऐसे महानुभाव भारतीय कथा साहित्य की अपारता से अपरिचित होते हैं। भारतीय साहित्य में गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत में लिखी हुई वड्ढ कहा (वृहत्कथा) सहस्र रजनी चरित्र की लकड़दादी प्रतीत होती है। अपने मूलरूप में यह पुस्तक प्राप्त नहीं है। पर क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा-मंजरी, सोमदेव के कथा सरित्सागर, आदि ग्रन्थ इसी की संततियां हैं। वैताल-पंचविंशतिका, सिंहासन-द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, शुक-सप्तति, आदि लोकप्रिय कथा-संग्रह इसी परंपरा में आते हैं। इनमें सहस्र-रजनी-चरित की भांति केवल

कुतूहलोत्पादक मात्र नहीं है वल्कि वे चरित्र का निर्माण करने वाली हैं। बाणभट्ट की कादंबरी और दंडी के दशकुमार चरित्र की कथाओं के आधार वृहत्कथा या उसकी संततियां हैं। वर्णन-बहुलता और भाषा में आलंकारिकता का समावेश कर इन दोनों ग्रन्थों का साहित्यिक रूप प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार संभवतः संस्कृत के इन दोनों गद्यकारों में हमें कथा का सर्व-प्रथम साहित्यिक रूप प्राप्त होता है। कादंबरी में आख्यायिका का जो चरम विकास दिखाई दिया उस कारण आजकल इस प्रकार के कथा-साहित्य अर्थात् उपन्यास का नाम ही मराठी में कादंबरी पड़ गया है।

क्रमशः देश पराधीनता के बंधन में कसता गया, जहाँ जनता को अपने धर्म और अपने अस्तित्व के लिए भी विधर्मि-यों और विदेशियों के साथ संघर्ष-रत होना पड़ा वहाँ सर्वांगीण क्या एकांगी उन्नति की भी आशा कैसे की जा सकती थी। सर्वतोमुखी अवनति की ओर ही भारत अग्रसर होता गया। तब साहित्य का अछूता बच जाना कहाँ तक संभव था। अतः बीच की कई लंबी शतियाँ कथा-साहित्य के इतिहास में अंधकार युग कही जा सकती हैं।

इन अंधशतियों के पश्चात् सहसा हम वर्तमान युग में आते हैं। दीर्घकालीन निद्रा के उपरान्त जागरण में हमें सर्वत्र एक आलोक सा दिखाई दिया और इसी आलोक में कथा एक सर्वथा नूतन रूप में हमारे सामने दिखाई दी। कथा का जन्म

भारत में हुआ, पली वह यहाँ। पर आज वह विदेशी साज शृंगार करके हमारे सामने आई है। एक शती पूर्व भी पश्चिम स्वयं इस कहानी-कला से अनभिज्ञ था। पर सौ वर्ष के अल्प-काल में ही योरोप ने कथा के विकास में सर्वांगीण उन्नति कर ली है। इन पाश्चात्य कहानी लेखकों ने कथा को जीवन का वास्तविक चित्र माना है और इन छोटी छोटी कहानियों में जीवन की जो छोटी छोटी झांकियां दिखाई हैं उनमें जीवन का सच्चा चित्र उपस्थित किया है। हमारा देश जहाँ गतिहीन हो गया—स्थिर होगया—वहाँ योरोप प्रगति पथ पर वेग से अग्रसर होता गया। अतः वर्तमान रूप में कथा की उत्पत्ति पहले पश्चिम में ही मानना न्याय-संगत होगा। अब कहानी केवल कुतूहल की सर्जना ही नहीं है; न वर्णन-बाहुल्य, वैचित्र्य-विधान, भाषा की आलंकारिकता आदि की ही उसमें आवश्यकता है। अब कथा का आधार जीवन है, जीवन की जटिल समस्याओं का चित्रण है, जीवन की झांकियां हैं। जीवन के चित्रण मनोवैज्ञानिकता के आश्रित होते हैं आदर्श के आधार पर नहीं। पहले कहानी का आनन्द चमत्कार में, उत्सुकता की अभिवृद्धि और उसके आकस्मिक उद्घाटन में होता था—अब मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, अनुभूतियों की प्रचुरता, भावों के उत्थान-पतन या अतर्द्वन्द्व में कथा का रस है। इस प्रकार आधुनिक कथा एक कुशल कलापूर्ण एवं प्रयत्न साध्य रचना के रूप में हमारे सामने आती है।

भारत में पाश्चात्य सभ्यता के साथ साथ साहित्य का भी पदार्पण कलकत्ते के पोतागार से ही हुआ। उर्वर बंगभूमि में फ्रांस, इंगलैंड और रूस का बीज खूब फला फूला और वहीं से क्रमशः सारे उत्तर भारत में फैलगया। वैसे तो हिन्दी में कहानी प्रारंभ सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान, मुन्शी ईशा अल्ला का 'रानी केतकी की कहानी', राजा शिवप्रसाद के 'राजा भोज का सपना', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'एक विचित्र स्वप्न', आदि उन्नीसवीं सदी में लिखी हुई कहानियों से माना जाता है। पर आधुनिक ढंग की कथा का श्रीगणेश बंगला की कथाओं के अनुवादों से ही हुआ। हिन्दी में इस प्रकार की मौलिक कहानियों का जन्म बीसवीं शती के प्रारंभ में 'सरस्वती' और 'इंदु' की गौरवशालिनी कोखों से हुआ। पर अनूदित कहानियों की संख्या के सामने मौलिक कहानियां अँगुलियों पर गिनी जा सकती थीं। भाषांतर सब से अधिक बंगला और अङ्गरेजी से हुए। फिर अङ्गरेजी में अनूदित फ्रांसीसी और रूसी कहानियों के भाषांतर भी सामने आने लगे। ये कहानियां शीघ्र ही लोकप्रिय होगईं। पत्रिकाओं ने इस प्रकार की कहानियों के प्रसार में पर्याप्त सहयोग दिया, बंगाली अनूदित कहानियों के साथ २ मोपासां, ऐंटन चेखव, तुर्गनेव, टालस्टाय, मैक्सिम, गोर्की, ओस्ट्रोवास्की आदि कलाकारों की रचनाएँ भी हमारे सामने आईं।

इन अनुवादों का हमारी कहानियों के विकास में पर्याप्त हाथ समझना चाहिए। हम उनके विचार और उनकी शैलियों

से प्रभावित हुए। फलतः हिन्दी में नए नए ढंग की, मौलिक कहानियां भिन्न भिन्न शैलियों में निकलने लगीं। थोड़े ही समय में हिन्दी कहानी ने पर्याप्त उन्नति की और कहानियों की बाढ़ सी आगई। यहां हिन्दी के कहानी साहित्य का इतिहास या विकास दिखाना हमारा उद्देश्य नहीं है। अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रतिमास कहानियाँ निकलने लगीं। पर इससे न प्रकाशकों को संतोष हुआ न लेखकों को ही। फलतः कहानियों की ही पत्रिकाओं की भरमार होगई। बाढ़ के जल के साथ गंदगी पर्याप्त रूप से पाई जाती है। यही हाल हमारे कहानी साहित्य का हुआ। मौलिक कहानियों के नाम पर बहुत सा कूड़ा कर्कट इन पत्रिकाओं में बहाया गया। मौलिकता' बेचारी का भी देवाला निकल गया। प्रायः सभी कहानियों का विषय 'प्रेम' नामधारी वासना होता था। पाश्चात्य चलती कहानियों का प्रभाव स्पष्ट था उनमें। नदी के बहते हुए स्रोत मे इधर उधर से स्वच्छ स्रोतों के मिलने से उसका कलेवर बढ़ता जाता है और उसमें एकाध गंदी नालियों का जल भी छिप जाता था। पर यहाँ उलटी बात थी। अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य होने से प्रायः प्रत्येक युवक युवती अङ्गरेजी ही आसानी से समझ सकते थे। रेल यात्रा करते हुए ह्वीलर की दुकानों से इस प्रकार की चलती प्रेम-कहानियां पर्याप्त रूप से उन्हें मिल जाया करती थीं। बंगला को छोड़कर अपने पड़ौस की अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य की ओर उनका ध्यान बहुत कम जा पाया, बंकिम, राय, टैगोर और शरद् के कारण बंगला भाषा के साहित्य से

हमारा पर्याप्त संपर्क रहा; पर विंध्या और अरावली के अंचलों की ओट में महाराष्ट्र के खांडेकर और फड़के अथवा गुर्जर प्रान्त के मुन्शी हम से बहुत दिनों तक छिपे ही रहे। उपन्यास तो अनुवाद रूप में कुछ सामने आए भी, पर कहानियां नहीं।

एक बात और भी। बंगाल ने प्रायः प्रत्येक बात में पश्चिम का अनुकरण ही अधिक किया है। क्या साहित्य क्या कला सब में पश्चिम का जो संमिश्रण होगया है उसमें हमें शुद्ध भारतीयता का रूप नहीं मिलता। यह प्रश्न दूसरा है कि उससे कला में कहाँ तक सुन्दरता आई है कहाँ तक विरूपता। संगीत को ही लीजिए। बंगाली संगीत में अंग्रेजी संगीत का संमिश्रण होगया है। यही बात उनके साहित्य के संबंध में भी कही जा सकती है। पर महाराष्ट्र ने अभी तक क्या कला क्या संगीत क्या साहित्य सबमें भारतीय संस्कृति का रूप अक्षुण्ण रखा है। शुद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत का जो रूप हमें महाराष्ट्र के संगीत में प्राप्त है वह बंगाली संगीत में नहीं। बंगाली छाया-चित्रों में सेय का जो पाश्चात् रूप खींचा जाता है उसकी 'प्रभात' कंपनी ने काफी खिल्ली उड़ाई थी। मराठी कहानियों में पाश्चात्य प्रभाव होते हुए भी भारतीय जीवन के चित्र अधिक मिलते हैं क्योंकि उनके जीवन में भारतीयता की मात्रा भी बंगालीयों की अपेक्षा अधिक है। अतएव कई दृष्टियों से हम मौलिकता के नाम पर प्रसाद पानेवाली गंदी प्रेम कहानियों से भारतीय-भावापन्न मराठी कहानियों के अनुवाद का विशेष

अभिनंदन करेंगे। जहाँ पहले ढंग की कहानियाँ हमारे विचारों को कलुषित करती है वहाँ दूसरे ढंग की कहानियां न केवल हमारे विचारों का उत्थान ही करेंगी प्रत्युत उनसे हमारे साहित्य का भी गौरव ही बढेगा। मराठी गुजराती की कहानियों के अनुवाद इधर कुछ हुए हैं सही, पर वे अभी नहीं के बराबर हैं।

भाषान्तरों के संबंध में भी कुछ कह देना यहां पर अप्रासंगिक न होगा। आज हमारे भाषान्तरकारों की दृष्टि पाश्चात्य लेखकों की ओर लगी हुई है। रूस की कहानियों का अनुवाद तो धड़ल्ले से होरहा है। पर माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में यह तो 'पराई उतरन पहनना' है। पराई उतरन वह पहने जिसके पास अपना कहने को कुछ न हो। किन्तु अपने ही देश की अन्य भाषाओं के अनुवाद से हिन्दी की कलेवर वृद्धि करना 'पराई उतरन' पहनना नहीं समझा जाना चाहिए। हिंदी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि तो सगी बहिनें हैं। एक के साहित्य का दूसरे में भाषान्तर-भावों का आदान प्रदान-वांछनीय ही नहीं प्रायः आवश्यक भी कहा जा सकता है। यह तो परस्पर सगी बहिनों में उपहारों के विनिमय जैसा है। इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत सङ्कलन में कतिपय मराठी कहानियों का रूपान्तर किया गया है—शब्द भाषान्तर इन्हें नहीं कहा जा सकता। एक लंबा युग बीत चुका है जब मराठी सीखने के उपक्रम में इन पंक्तियों के लेखक ने कतिपय कहानियों का रूपान्तर केवल अभ्यास-वश किया था। इन्हें प्रकाशित करने का विचार भी

कभी मन में नहीं आया था। अतः इस समय जब प्रकाशक महोदय के अनुरोध से ये कहानियां प्रकाश में आ रही हैं तब मुझे न तो यह स्मरण है कि किस मासिक पत्र या पुस्तक में मैंने ये कहानियां पढ़ी थीं—अथवा किस लेखक की ये रचनाएँ हैं। न किसी विशेष दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इनका चुनाव किया गया है। फिर भी मेरा अपना विचार है कि ये कहानियां मराठी की सुन्दर कहानियों में से हैं और हिंदी पाठकों के सामने इनके द्वारा कतिपय नवीन शैलियों को प्रस्तुत किया गया है। यहां संक्षेप में कहानियों का पृथक् पृथक् विश्लेषण कर हम अपने वक्तव्य को समाप्त करेंगे।

'अंतिम किसलय' कहानी के ही अन्यतम पात्र मनमोहन के 'मास्टर पीस' अंतिम किसलय से किसी प्रकार कम नहीं है। पाठक की उत्सुकता और जिज्ञासा अन्त तक बढ़ती ही जाती है और अंतिम किसलय का रहस्य तब तक नहीं खुलता जब तक लेखक कथा के अन्त में स्वयं उसका उद्घाटन नहीं करता। कहानी सहज स्वाभाविकता से एक मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर भी संकेत करती है। चित्रकार ने रोगी की मनोदुर्बलता को पहचान लिया और अपनी चित्रकला द्वारा उसके मन से मृत्यु के विचार को हटाने में वह समर्थ हुआ। कला का कैसा सुन्दर उपयोग है! साथ ही त्याग का कितना ज्वलन्त दृष्टान्त!

'रुक्मिणी स्वयंवर' प्राचीन नाम की ओट में एक नया 'रोमांच' है। आधुनिक कहानी के ढंग की होते हुए भी इसमें

पूर्ण भारतीयता की झलक है। शास्त्रीजी कृष्णकान्त की प्रशंसा करते नहीं अघाते; पर जब उनकी ही पुत्री से उसके व्याह की मांग की जाती है तो 'आमदनी अच्छी नहीं' के नाम पर वे उसकी माता की याचना को ठुकरा देते हैं। कृष्णकान्त 'पोथी के बैगन' पर भरोसा कर के नहीं बैठ जाता। 'रुक्मिणी-हरण' का पाठ सुन कर उसको कार्यरूप में परिणत कर दिखाता है। कहानी अपनी चरम सीमा पर वहां पहुँचती है जहां 'कृष्णकान्त-रुक्मिणी' के तांगे से उतरते ही दोनों के प्रणाम के उत्तर में शास्त्रीजी के मुख से 'अष्टपुत्रा-सौभाग्यवती भव' का आशीर्वाद अनायास ही निकल पड़ता है। क्रुद्ध होते हुए भी पिता का हृदय पुत्री को अशीर्वाद दिए बिना कैसे रह सकता था। कृष्णकांत की क्षमायाचना सर्वथा भारतीय प्रवृत्ति के अनुकूल है तो उनका यह व्यवहार रूढिवादी बुड्ढों की आंखें खोलने के लिए आवश्यक भी है।

'कड़वी-शक्कर' कहानी के शीर्षक में ही लेखक ने दो विरोधी शब्दों द्वारा कथा की प्रधान नायिका सांवरी नटी का जो सुन्दर और वास्तविक चित्र खींच दिया है वह पाठकों के हृदय का स्पर्श करने में ठीक उसी तरह समर्थ होता है जिस तरह वह नटी अपने रोमांच कारी खेलों द्वारा दर्शकों का चित्त हर लेती थी। उसका चरित्र ही इस कथा का प्राण है। उसका मोहक रूप, उसकी सुगठित देह-यष्टि, उसकी जादूभरी आंखें, उसकी मृदु मुसकान, सब से बढ़कर रोंगटे खड़े कर देने वाली उसकी

कुशल नट क्रीडा—इन सबने मीठी शक्कर की भांति इनामदार को मोहित किया तो, पर यह मिठास दूर से ही मीठी थी पास जाने पर इसकी कडवाहट का पता इनामदार साहब को दूसरे ही दिन लग गया। इसके ऊपर कुदृष्टि डालने और सतीत्व पर आक्रमण करने के प्रयत्न में उन्हें अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ा। साखरी (शक्कर) स्वाद में मीठी होते हुए भी पाचन में कड़वी सिद्ध होगई। साधारण नटों में भी स्त्रियों का चरित्र इतना उज्ज्वल होता है यही भारतीय विशेपता दिखाना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। कहानी आदि से अन्त तक रोचकता और कुतूहल से भरी हुई है।

'जैसा दीखता है वैसा नहीं' कहानी का शीर्षक वास्तव में कहानी के उपयुक्त नहीं। कहानी जितनी अच्छी है शीर्षक उतना ही भद्दा और अर्थहीन भी। फिर भी मूल शीर्षक को बदलने का प्रयास नहीं किया गया है। इसमें मानव की स्वार्थपरता का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण अपने स्वार्थ पर आघात पहुँचने—अपना मुँह मांगा कमीशन न पाने—पर जो पिलोबा पांडोबा की दुकान में 'ताला लगवाने' का भरसक प्रयत्न करता है। वही अपने दूसरे स्वार्थ की सिद्धि के लिए—अपनी एक मात्र पुत्री को वर्त्तीर्णाङ्क दिलाने के लिए—पानी से भी पतला बन कर पांडोबा की मिन्नतें करते आ पहुँचता है। मनुष्य स्वभाव का कितना वास्तविक चित्र है।

'मेरी पहिली वकीली' जासूसी न होते हुए भी रहस्य के

उद्घाटन में किसी जासूसी कहानी से कम नहीं। कहानी अन्त तक कुतूहल वर्द्धक एवं रोचक है। जासूसी कहानी में लेखक घटना को अपनी रुचि के अनुसार मोड़ लेता है—चाहे उसमे स्वाभाविकता रहे या न रहे। पर इसमें यह बात नहीं घटनाओं का विकास स्वाभाविक है। ताराबाई की चोरी की घटना और डाक के तांगे को लूटने की घटना में परस्पर कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं, पर दूसरी घटना से पहली घटना का जो संबन्ध सहज ही एवं अनायास ही होगया है उसमें बनावट का नाम नहीं। यही लेखक के कौशल की विशेषता है। रोचकता भरपूर है। वकील महोदय की सफलता के भीतर कहानी की भी सफलता छिपी हुई है। सालूबाई का पत्र ही रहस्य उद्घाटन के लिए कुंजी का काम करता है। कहानी की चरम सीमा भी यहीं है।

'झूठी प्रेम कथा' में दंपति के सच्चे प्रेम की अनूठी कथा है। गुलाबराव सच्चे अर्थों में डाक्टर है। केतकी को उसमे साहित्यिक या कथाकार के लक्षण दिखाई देते हैं। पर अन्यत्र उसी के शब्दों में वह 'उत्तम डाक्टर' है। वह जितनी ही सरलता से शारीरिक व्याधियों की चिकित्सा करने में ख्याति पा सका है उतनी ही सफलता से हम उसे एक जीर्ण मानसिक व्यथा का भी उपचार कर सकता है—यह उसने सिद्ध कर दिया है। कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक है।

'पत्तों का बंगला' और 'दो मेघ' ये दोनों भाव कथाएँ हैं और हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा नवीन वस्तु। गद्यकाव्य के

नाम पर तो हिंदी में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, पर इस प्रकार की भावकथा का अभाव ही है। 'लालटेन' एक शब्दचित्र है और हिंदी जगत् के लिए यह भी नई चीज है। भावकथा और शब्दचित्र दोनों की शैली अनुकरणीय है। केवल ये तीनों ही इस संकलन के महत्व को बढाने के लिए प्रर्याप्त हैं।

अंतिम कहानी है 'मातृभूमि की पुकार' ताड़ी के पेड़ के नीचे पिया हुआ दूध भी लोकनिंदा का कारण होता है-यह घटना भी ठीक उसी प्रकार की है। एक चीनी वेश्या सुदूर भारत में रहते हुए अपनी मातृभुमि की पुकार पर किस प्रकार अपने शरीर को बेचकर प्राप्त किए हुए धन को जापानियों से अपने देश की रक्षा के निमित्त चीन भेजती है—इसका इस कहानी में सुन्दर चित्रण है। कर्म सत है या असत इस बात को जाँचने की कसौटी उसका उद्देश्य होना चाहिए न कि वह कर्म स्वयं। वेश्या के हृदय की देश-प्रेम की ज्योति ने उसके कलुष को धो दिया है और वह वेश्या न रहकर मंगलामुखी होगई है।

अनुवादक का यह दावा नहीं है कि ये कहानियां मराठी की सर्वश्रेष्ठ कहानियां हैं। इसका तो प्रयत्न भी नहीं किया गया है। अनुवाद में भूलों का रहना अस्वाभाविक नहीं। १२ वर्ष पूर्व खेल ही खेल में किए गये अनुवाद की पांडुलिपि मुद्रक को देना पड़ी। प्रकाशक महोदय ने जिस हड़बड़ी में इन्हें छापने का आग्रह किया उसे देखते हुए इनका पुनर्लेखन या संशोधन संभव नहीं था। प्रकाशक से दूर रहने और पारिवारिक चिन्ताओं से

व्यस्त रहने के कारण प्रूफ संशोधन का भार भी इन्हीं पर छोड़ देना पड़ा। इससे प्रेस के प्रेमियों की कृपा से मुद्रण संबंधी कई भूलें भी रह गई हैं। यदि कभी दूसरा संस्करण हुआ तो यथोचित संस्कार कर दिया जायगा।

इन कहानियों में जो उत्तमता है वह उन मूल लेखकों की है जिनका नाम तक मुझे विस्मृत है और इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ। और जो कुछ त्रुटियां हैं वे मेरी हैं जिनके लिए मैं उन लेखकों से और पाठकों से भी क्षमा याचना करता हूँ।

गंगा दशहरा
सं २००५ विक्रमीय } **गोपीकान्त पंडित**

अन्तिम-किसलय

बम्बई के उत्तर में माटुंगा उपनगर में "किंगस् सर्कल", "एंटौपहिल", "चौपाटी" आदि सुन्दर और नैसर्गिक स्थानों से पाठक कदाचित् भली भाँति परिचित होंगे। "कपोल" कवि-रचित उन स्थानों की कविताएँ यदि आप पढ़ें तो आपको उनके पढने में बहुत आनन्द होगा और वे स्थान देखने के लिये आप बड़े उत्सुक होंगे तथा बम्बई आने पर आप अवश्य उन स्थानों को देखे बिना न रहेंगे।

आपको हो चाहे न हो, परन्तु मुझे और कामिनी को उन कविताओं के पढ़ते ही न जाने क्यों उनके देखने की लालसा हुई।

मैं और कामिनी—हम दोनों ही "कला-महाविद्यालय" की विद्यार्थिनी थीं। कवि-कपोल-कृत दादर, माटुंगा सरीखे स्थानों का रसोत्फुल्ल वर्णन पढ़कर उन्हें देखने ही का नहीं अपितु उनके कुछ महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थानों के चित्र बनाने का भी निश्चय हमने कर लिया।

और इसीलिए जून के महीने में मैं और कामिनी वहाँ माटुंगा रहने के लिये चले गये।

दो तीन महीने में हमने बहुत चित्र बना लिये, सितम्बर में निमोनियाँ फैलना प्रारंभ हुआ और मेरे दुर्भाग्य से या डाक्टर के सुदैव से कामिनी बीमार पड़ी, निमोनिया का ही बुखार था उसे।

उसकी बीमारी का चौथा दिन था। सुबह ही डाक्टर ने मृत्यु-पथ-गामिनी कामिनी को देखा और जाने के पूर्व मेरे कमरे में आकर कहा,

"देखिये, कुमारी उमा, कुमारी कामिनी के अच्छे होने के बहुत काफी लक्षण हैं, और वे लक्षण तभी सफल हो सकते हैं, जब उन्हें फिर से जीने की इच्छा हो। आपकी सहेली के हृदय की ठीक ठीक छान बीन मैं नहीं कर सकता। लेकिन जीने को अनिच्छा होने का कारण—क्षमा करिये—उन्हें किसी बात का 'आकस्मिक मानसिक आघात' होना चाहिए।"

मेरी विचार तंत्री झंकृत हो उठी और मैंने कहा,

"उसके मन में 'गंटोपहिल' के ऊपर से दिखाई देने वाले दृश्य का चित्र............"

"हुश्", हाथ के थर्मामीटर को जोर से झटकते हुए डाक्टर ने कहा, "कामिनी के मनमें किसी अचल चित्र का नहीं सदा परिवर्तित होने वाले एक चल चित्र का......"आइ मीन ए मैन" (मेरा अभिप्राय एक मनुष्य से है)............"

मैंने आश्चर्य से कहा,

"मुझे तो ऐसी किसी बात का ज्ञान नहीं।"

"पर देखिये, मन का स्थिर न होना ही बुखार का कारण है। मैं जितना उपकार कर सकता हूँ उतना पूर्ण रूपेण कर रहा हूँ। कामिनी को स्वस्थ करने का प्रयत्न मैं भरसक करूँगा। लेकिन जब रोगिणी स्वतः श्मशानःयात्रा की तैयारी करने लगे और हमें भी अपना साथी बनाना चाहे तब हम बेचारे कर ही क्या सकते हैं? क्यों सच है न? इसलिये मैं कहता हूँ कि आप जरा उन्हें आशावादी बनाइए।"

डाक्टर के जाने पर मैं बेचैन सी होगई। कामिनी के भावी जीवन के विषय में मेरी मन—मणियाँ धूमिल तारिका सी ओज रहित होगई थीं। मन रिझाने के लिए मैं सितार पर जोगिया राग बजाने लगी।

सितार रखकर मैं कामिनी के कमरे में गई। वह निद्रादेवी के अंचल में अपने मुख को छुपाने जा रही थी। ज्वर के कारण उसके मुख पर सदा खेलने वाली हास्य छटा न जाने किसके विरह में विलीन होगई थी। अथवा यह कहिए कि उसके मुख पर उदासीनता की एक विलक्षण प्रभा विकसित हो रही थी। उसके शरीर पर का ओढ़ना ठीक करके मैं पास ही कुर्सी पर प्रो० विडोलफ की 'कला और कलाकार' पुस्तक पढ़ने लगी।

थोड़ी देर में कामिनी के कराहने की आवाज सुनकर मैं दौड़ी हुई उसकी खाट के पास गई।

"दस...नौ...आठ...सात..." वह उलटे अंक गिन रही थी।

मैंने खिड़की के बाहर देखा कि गिनने योग्य आखिर है क्या ? बंगले के बाहर रेतीला आँगन था। दूर पर दीवाल के पास कुछ छोटे छोटे पुष्प खिल खिला कर विहँस रहे थे। खिड़की से ठीक सामने देखने पर एक ही अंगूर की बेल दिखाई दे रही थी। उसके आस पास बहुत दूर तक एक भी पेड़ नहीं दिखाई देता था। कड़ाके के जाड़े के कारण उस बेल की बहुत सी पत्तियां गल कर गिर गई थीं। तिस पर वर्षा के कारण बेल की शोभा अपूर्व थी और इसी लिये कदाचित बेल की पत्र हीन साखायें मन को उदास कर रही थीं।

" कामिनी, ओ कामिनी······क्या हुआ री ? "

" हैं ! पाँच ! परसों पन्द्रह थी ! और इतने ही दस !... फिर नौ!........... अब पाँच !............च् च् च् च् ; और अब चार !"

" अरी ! चार क्या ? बताती क्यों नहीं ? "

" किसलय ! उस अंगूर की बेल की पत्ती ! जब वह अन्तिम किसलय गल कर गिर जायगा············तब इस पगली की जीवन-यात्रा समाप्त हो जायगी·····निश्चय। यही मैंने डाक्टर से भी कह दिया है। क्यों उन्होंने कुछ कहा नहीं इसके विषय में ?"

"छीः ! मैं ऐसी अर्थ हीन बातें कभी नहीं सुनती।" मैंने जरा उपेक्षा से कहा, " तेरे जीवन का उस निर्जीव बेल के किसलयों से क्या सम्बन्ध ? अरी पगली ! तू भी निरी

मूर्खों की तरह संबंध लगाने लगी। क्यों न ? डाक्टर कहते हैं कि अगर कामिनी को आठ दिन में कोई लाभ नहीं हुआ तो डाक्टरी करना छोड़ दूँगा, अब तू थोड़ी काफी पीले। मुझे उस मासिक का चित्र पूरा करके कल पैसे लाने ही चाहिये। फिर हम दोनों मौज करेंगे।"

"हट ! मौज करने के लिए मै जीवित न रहूँगी, यह देख एक और किसलय गिर गया ! अन्तिम किसलय के साथ मेरा अन्त हो जायगा।"

"कामिनी, कामिनी, तू तनिक चुप क्यों नहीं रहती ? आँखें बन्द करके चुपचाप सो जा। मुझे इस मासिक का चित्र पूरा करना ही है आज।"

"तू अपने कमरे में जाकर चित्र बनाती क्यों नहीं ?"

"अँ–हूँ–! तेरा बाहर देखना जो मुझे बंद करना है।"

"अच्छा–अच्छा ! मैं आँखें बंद करती हूँ। लेकिन चित्र पूरा होने पर मुझ से कहना।"

ऐसा कह कर कामिनी ने खिड़की की ओर पीठ कर आँखें बंद कर लीं।

"। मुझे अन्तिम किसलय देखना है भला ! मैं मृत्यु की बहुत देर से बाट देख रही हूँ। विचार करके थक गई। बाइबल में एक कहावत है—'मानव मरने पर धूल में मिल जाता है', वह अन्तिम किसलय और मैं दोनों मिट्टी में मिलकर एक होकर नया संसार बसाएँगे।"

"हुश् ! चुप हो जा ! बड़ी पगली है री तू ! चुपचाप सो जा," मैं रुष्ट होने का अभिनय कर चिल्लाई। "मैं नीचे जा कर अपने मन मोहन को 'मॉडल' के लिये लिवा लाती हूँ, बिलकुल उठना नहीं, समझी।"

\+ \+ \+

मन मोहन नीचे की मंजिल में रहता था, चित्रकारी से शौक रखता था। उसकी आयु साठ के लगभग थी। छाती पर खेलने वाली उसकी वह सफेद घुंघराली दाढी ! और एक तपस्वी की सी शोभा उसके मुख मंडल पर नाच रही थी।

मन मोहन को सदा चित्रकला में अपयश ही मिला, लगभग चालीस वर्ष में उन्होंने एक भी चित्र पूरा करने के लिये, अथवा घर की दीवार तक रंगने के लिये "ब्रुश" नहीं उठाया था। 'मैं एक अत्युत्कृष्ट चित्र बना रहा हूँ', ऐसा वे सदा कहा करते थे, परन्तु उसे बनाना कभी प्रारंभ तक न किया था। नये तरुण चित्र कारों के लिये, 'मॉडल' बन कर बैठने के सिवाय उन्होंने चित्र कला को और किसी प्रकार की सहायता नहीं की थी, हर महिने की दूसरी तारीख को वे धनी हो जाते थे और जल्दी ही प्रकाशित होनें वाले अपने अत्युत्कृष्ट चित्र की बात सुनाते।

जिस समय मैं मन मोहन के कमरे में घुसी उस समय वे "साप्ताहिक अर्जुन" का 'भविष्य' देखने में लगे थे, मुझे देखते ही उन्होंनें वह पत्र छिपा लिया।

कामिनी की कल्पना के विषय में मैंने उनसे कुछ कहा तो उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया।

"बिलकुल मूर्खता ! छो: ! 'वह अन्तिम किसलय गिर जाने पर ही मैं मर जाऊँगी' ऐसी ही कल्पना करने वाला तरुण समाज है तो तुम लोगों का, ऐसे मूर्ख चित्रकारों के लिए 'मॉडल' बनना अर्थात अपना अपमान कराना है। लेकिन तुम भी यह सब कैसे चलने दे रही हो ?"। यह कहकर उसने लम्बी सांस ली।

"वह जरा अशक्त है और उस पर भी बीमार। इसीलिये यह सब होता है। परन्तु यदि 'मॉडल' बनने से अपमान हो रहा हो तो.............."

"डेम-इट ! बिलकुल अनोखी हो तुम।" मनमोहन चिल्ला पड़ा। "किसने कहा कि मेरा अपमान होगा, चलो, चित्र खींचना है तो ! मैं कहता हूँ कि युवक-युवतियों के लिये मैं ठीक 'मॉडल' नहीं हूँ। थोड़े दिनों में मैं अपना 'मास्टर पीस' (सर्वोत्तम चित्र) रँगूंगा और फिर सारा बंगला मैं ही ले लूँगा जिससे सब लोग बँगला छोड़ कर भाग जावेंगे। समझी ?"

मैं मन मोहन को लेकर कामिनी के कमरे में आई। उसे गहरी नींद आ रही थी। बाहर वर्षा लगातार हो रही थी। अंगूर बेल के अन्तिम दो किसलय उसकी शाखा को केवल चूम रहे थे। और वे भी अपनी प्रेम मयी माता से बिछुड़ने वाले थे वे सिसक रहे थे।

मैं कुर्सी पर जा बैठी और क्षण भर बाद मन मोहन को सामने बिठला कर एक खान-मजदूर का चित्र बनाने लगी।

दूसरे दिन सवेरे उठ कर पहिले मैंने कामिनी के सिरहाने की खिड़की खोल कर बाहर देखा।

रिम-झिम रिमझिम पानी पड़ रहा था। काले मेघ थे और आँगन में काई जम गई थी।। सारा वायु मण्डल कोहरे से आच्छादित था। आँगन में के पौधों के पत्ते लगभग गिर गये थे। परन्तु सारी रात किसी न किसी तरह से बिताने वाला एक ही किसलय पृथ्वी से सात फुट पर दीवार से चिपक रहा था। अन्तिम किसलय! और वह भी गिर जाने पर।

"हः! अन्तिम किसलय!" कामिनी के इन शब्दों से मैं एक दम घबरा सी गई। कामिनी किसलय की ओर देख कर कुछ बड़बड़ा सी रही थी।

"मुझे ऐसा प्रतीत हुआ की सवेरे सब किसलय गिर जावेंगे और मैं भी इस पाप मयी दुनियां से गिर कर किसी अथाह सागर की लहरों में विलीन हो जाऊँगी।"

"कामिनी, कामिनी, अपने आपके लिये अगर तू निश्चित है भी तो मेरे विषय में विचार कर। तेरे चले जाने पर................" जोर से सिसकी आने के कारण मैं बोल न सकी।

परन्तु कामिनी ने कोई उत्तर न दिया। वह बिलकुल चुप थी। स्वर्ग की—इतने दूर की—विचित्र यात्रा की तैयारी करने वाला प्राणी! अर्थात संसार से निकाली हुई एक वस्तु! उसके लिये प्रेम की या मित्रता की गांठ और जीवन का उत्साह बिलकुल नहीं रह जाते।

इसके बाद दो तीन दिन तक खूब वर्षा हुई, तो भी वह अन्तिम किसलय अपने स्थान पर था।

प्रातःकाल उठते ही कामिनी खिड़की खोलने के लिये आग्रह करती और मैं भी विवश हो कर डरते डरते उसे खोल देती। उस समय किसलय को यथास्थान देखकर मेरे जी में जी आता।

उस दिन मैं कामिनी के लिये 'ओवलटीन' बना रही थी और वह कह रही थी :

"सचमुच उमा, कितनी पापिनी हूँ मैं! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रचण्ड शक्ति ने उस किसलय को वहीं पकड़ रक्खा है। देखा न! इतनी जोर की हवा चल रही है और वह हिलता भी नहीं है, और वह गिर जाय ऐसी इच्छा करना भी मानो पाप करना है; मरने की तो मैंने इच्छा ही छोड़ दी है। अच्छा! मुझे कुछ खिला! रहने दे। पहले यह तकिये और मसनद लगा कर मुझे बिठाल दे। मैं तुझे खाना तैयार करते देखना चाहती हूँ

डाक्टर दोपहर को हालत देखने आये। उन्होंने कामिनी की दशा देख कर प्रसन्न भाव से कहा,

"हूँ:! मिस उमा, अब कोई डर नहीं। लेकिन देख भाल और उपचार में अब भी सावधानी की आवश्यकता है, मै जाता हूँ और एक केस है।"

"नीचे मन मोहन नाम का कोई चित्रकार है। मेरे विचार में उसे भी निमोनियाँ ही है। पहले ही बुड्ढा! और उस पर भी ऐसे जोर का निमोनियाँ! वास्तव में कोई आशा नहीं है, उसे आज अस्पताल पहुँचाऊँगा।"

\+ \+ \+

और दूसरे ही दिन प्रातःकाल में कामिनी को समाचार-पत्र पढ कर सुना रही थी। बीच में एक समाचार पढ़कर मैंने कहा—

"सुना कामिनी, अपना वह मन मोहन चित्रकार कल मर गया। छूट गया बेचारा अन्तिम यातनाओं से। वह एक या डेढ दिन बीमार रहा। वह आदमी उसका साथी है न? सदा की तरह वह कल प्रातःकाल काम पर आया तो मन मोहन सो रहा था। उसके सारे कपड़े पानी में बिलकुल तर हो रहे थे। उसके जूते कीचड में सने थे। यह सब अगले दिन की रात का था। ऐसी काली रात्रि में न जाने साहब कहाँ चले गये थे? डाक्टर आये। उन्होंने चारों ओर की परिस्थिति देखी—

एक दीपक जल रहा था। उस दीपक पर पानी पड़ने के कारण कहीं २ पर उसमें चटक आगई थी। एक लकड़ी की सीढी रखी हुई थी। उसके पैर भी कीचड़ में सने हुए थे। पास ही एक रंग तैयार करने की तख्ती रखी थी और हरे रंग में सने हुए 'ब्रुश' पड़े थे। कोई भी इन बातों का अर्थ न समझ सका। परन्तु मैं यह सब जान गई।

"कामिनी, वह बाहर के किसलय को देखो ! प्रचण्ड आंधी होने पर भी वह नहीं हिलता। 'अन्तिम किसलय' मुर्झा कर गिर न जाय इसलिये उसने स्वतः वर्षा में भीग कर पहले दिन की रात को वही किसलय रंगा था, वह किसलय निर्जीव है।"

"मन मोहन का 'मास्टर पीस', प्यारी उमा !"

मैंने सहसा उसकी ओर देखा—

कामिनी के कमल मुख पर ओस कणों के समान अश्रुबिंदु निकल कर अंतर्वेदना की झांकी के दर्शन करा रहे थे, या न मालूम किस प्रिय संदेश की विशाल ग्रीवा को सुमन-शोभन करने के लिए अश्रुकण एक हार बना रहे थे।

रुक्मिणी-स्वयंवर

हमारा गाँव—अर्थात् न गाँव ही न शहर हो-! गांव की जन संख्या लगभग दस हजार है। स्कूल, कचहरी, अस्पताल आदि सब वहाँ हैं, परन्तु रेलवे स्टेशन से गांव बहुत दूर है। इसलिए व्यापार वहाँ कुछ भी नहीं। खेती वाला ही वहां आनंद से रह सकता है।

पार्वती देवी का सर्वस्व था उसका इकलौता बेटा। दो वर्ष का लड़का होते ही उसके पिता परलोकवासी होगये थे। यहां पर पुत्र का भावी जीवन और शिक्षा समाप्त हो गये। पार्वती देवी ने अपनी ओर से पुत्र को सुशिक्षित करने में कुछ कसर न उठा रखी। घर की स्थिति कुछ अच्छी न थी। एक-दो बीघा जमीन थी—वह भी कर्ज पर चल रही थी। आगे कोई उपाय न देखकर कृष्णकान्त ने पढ़ना छोड़ दिया और एक छोटी सी कपड़े की दुकान खोल ली। यही उन मां-बेटों की उदरपूर्ति का साधन था। और वृद्धा माता को तो इतने ही से संतोष था।

कृष्णकान्त स्वभाव से ही मृदुभाषी था और अपनी सुशीलता से वह दूसरों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। ग्राहकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। न कोई व्यसन ही उसे था। भोला स्वभाव, सार्वजनिक कार्यों से प्रेम, दुःख-सुख में सब के काम आने वाला। इसलिये प्रत्येक पुरुष उससे सहानुभूति प्रकट करता। परन्तु दुकान से आमदनी

केवल निर्वाह भर को होती थी। सरकारी नौकरी थी नहीं। इसलिए अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था और कदाचित् इसीलिए कोई उसे अपनी बेटी देने को विशेष इच्छुक न था। सगाई हुई और छूट गई। इसी तरह चार पांच बार हुआ। 'पुत्र का भाग्य अच्छा नहीं इसी कारण यह सब विघ्न आते हैं,' यही अपने मन में विचारकर वृद्धा माता सदा देवताओं को मनौतियां करती।

\+ \+ \+

एक दिन वह कथा सुनने मंदिर में गई, कथा समाप्त होने पर पार्वती देवी ने शास्त्री जी से प्रश्न पूछा—

"मेरे कृष्णकान्त का विवाह होगा या नहीं?"

शास्त्री जी ने उत्तर दिया,

"अरे यह क्या पूछती हो? तुम्हारा पुत्र कर्तव्यशील है। आजकल देश में सरकारी नौकरी से अपना स्वतः का धन्दा करना ही श्रेष्ठ समझा जाता है। गांधीवादी तो नौकरी को गुलामी कहते हैं और व्यापार को स्वतन्त्र वृत्ति। कृष्णकान्त की तो अपनी निज की दुकान है। तब विवाह में देरी क्यों? निश्चय ही कोई अनिष्ट ग्रह आये होंगे। इसके लिए तुम व्रत करो और बेटे से 'रुक्मणी-स्वयंवर' का पाठ करने को कहो। फिर यह माघ खाली न जायगा।"

घर लौटने पर माता ने पुत्र से यह सब हाल कहा और साथ ही नियमित रूप से 'रुक्मणी-स्वयंवर' का पारायण करने का उससे आग्रह किया, पर कृष्णकान्त ने इस ओर ध्यान ही

नहीं दिया, इस पर माता से न रहा गया । जब कृष्णकान्त दुकान उठाकर घर आता तभी वह शास्त्रीजी से पाठ करवाती। शास्त्रीजी 'स्वयंवर' की कथा कहते भी थे बहुत अतिरञ्जित कर।

कृष्णकान्त के हृदय पर इसका परिणाम भी वही हुआ जो होना था। शास्त्री जी की एकलौती पुत्री थी । वर्ण साँवला, शरीर सुगठित और शिक्षा सामान्य। रुक्मिणी उसका नाम था। उसने कृष्णकान्त के हृदय में कुछ अनोखा आकर्षण एवं क्रांति उत्पन्न करदी। 'कृष्ण' उसके संसार में पहुँचने का प्रयास करने लगे।

रुक्मिणी को वह छुटपन से ही जानता था । अतः उसके विषय में माता जी से कहना उसने आवश्यक समझा । एक दिन साहस करके उसने माताजी से कह ही तो दिया । वृद्धा माता को यह प्रस्ताव बहुत पसन्द आया और इस विषय में उसने शास्त्री जी से चर्चा करदी । परन्तु शास्त्री जी ने कहा,

"कृष्णकांत की कोई अच्छी आमदनी नहीं, न उसके पास कुछ खेती पाती ही है; पढा लिखा भी अधिक नहीं, और न कोई सरकारी नौकरी ही है। इसलिये उससे मै अपनी लाडली लड़की का व्याह नहीं कर सकता।"

शास्त्री जी ने प्रस्ताव को एक दम अस्वीकार कर दिया है यह जानकर कृष्णकान्त अत्यन्त दुखी हुआ।

दैवी गति बड़ी विचित्र होती है, एक दिन रुक्मिणी कृष्णकान्त की दुकान पर ऊन लेने आई। तब कृष्णकांत ने कुछ साहस बटोर कर न जाने कब से गोपन्न किये हुए अपने विचारों को

उसके सामने स्पष्ट रख दिया। हृदयाकाश का एक एक तारा उसके चन्द्रमुख के आसपास बिखेर दिया। रुक्मिणी के मन में कृष्णकांत के प्रति प्रेम भावना थी ही। आज उसकी सुप्त भावना जागृत हो उठी और उसकी दुनिया में हलचल मच गई। उसने मुग्ध भाव से स्मित पूर्वक अपनी सम्मति देदी।

\+ + +

आगे—तुलसी शालिग्राम का विवाह हुआ दोनों घर के लोग-वन भोजन को उसी मन्दिर में गये। और उसी समय—तुलसी शालिग्राम को साक्षी दे कर कृष्ण रुक्मिणी सहित रथ पर बैठकर × × × × × × नौ दो ग्यारह हुए। पास ही एक "ब्राह्मण कार्यालय" में जाकर एक सुमुहूर्त में—अग्नि, सूर्य, देव, ब्राह्मण—इनको साक्षी देकर वे दोनों विवाह बद्ध होगये।

कृष्णकान्त-रुक्मिणी के गाँव से गायब होने से गांव भर में उन दोनों के सम्बंध में भली बुरी चर्चा फैलने लगी। कितनों ही ने शास्त्री जी को दोषी ठहराया। विवाह के लिये बरसों बाट देखने के उपरान्त उसने कृष्णकान्त से स्वयंवर कर लिया—सो बहुत ठीक किया उसने। कुछ कहते कृष्णकान्त सचमुच ही भोलाभाला दिखाई देता था। वह बदमाश न था। परन्तु उसकी इतनी हिम्मत भी कैसे हुई और वह गया तो भी कहां गया।

रुक्मिणी के लोप होते ही शास्त्री जी ने कोतवाली में रिपोर्ट लिखाई। पुलिस ने अपनी कार्यवाही आरम्भ कर दी।

दूसरे ही दिन पुलिस ने खबर दी कि कोतवाल साहब के पास एक पत्र आया है कि हमारे परम पूज्य श्वसुर शायद आपके यहां रिपोर्ट करने आयें तो आप उनसे निश्चिन्त रहने के लिए कह दें।

\+ + +

आज मकर-संक्रांति का दिवस। शास्त्री जी प्रतिदिन की भांति अपने चबूतरे पर बैठे थे। इसी समय "कृष्णकांत—रुक्मिणी" तांगे से उतरे और जोड़े से शास्त्री जी को नमस्कार किया। अब शास्त्री जी को "अष्टपुत्रा-सौभाग्यवती-भव" यह आशीर्वाद अपनी पुत्री को देना ही पड़ा।

आशीर्वाद देने के उपरान्त जरा क्रुद्ध हो कर कृष्णकान्त की ओर देख कर शास्त्री जी ने कहा—

"कृष्णकान्त बहुत अच्छा किया तुमने। तुमको मैं अब तक बहुत सभ्य समझता था लेकिन यह सब कहां से सीखा?"

कृष्णकान्त ने उत्तर दिया—

"रुक्मिणी-स्वयंवर" का पाठ आप मेरे घर पर इसलिए किया करते थे कि शीघ्र मेरा विवाह हो जाय। पर मैंने कथा के बैंगन कथा ही में ही न रहने दिये और उनको व्यवहार में ले आया। इसके लिए आप मुझे क्षमा कर दीजिये।"

\+ + +

'रुक्मिणी-स्वयंवर' की फलश्रुति सत्य कर दिखाने के लिए मित्रों ने कृष्णकांत का अभिनन्दन किया, परन्तु कट्टर पन्थियों ने क्रोध में आकर "रुक्मिणी-स्वयंवर" की पुस्तकें नदी के भंवर में फेंक दीं। पुस्तकें तो नदी के प्रवाह में बह गईं, परन्तु कृष्णकान्त ने किस प्रकार रुक्मिणी-हरण किया यह चर्चा बहुत दिनों तक चलती रही।

कड़वी-शक्कर

"शक्कर और कड़वी ? परन्तु इसका रहस्य इस हृदयस्पर्शी कथा के पढ़े बिना आपकी समझ में न आ सकेगा।"

+ + +

आज जामगाँव में जिस तिस के मुँह से एक ही बात सुनाई पड़ती थी—साखरी नटी ! साखरी नटी !! आज चार वर्ष बाद साखरी का खेल फिर से जामगाँव में आया था। बुड्ढे बुढ़ियों के मुँह से, छोटे बड़ों के मुँह से, युवक युवतियों के मुँह से, लड़के बच्चों के मुख से, आज साखरी ही की चर्चा चल रही थी। साखरी थी भी वैसी ही। खेल देखना हो तो साखरी नटी का। और नटियों में उसकी समता करने का दम कहाँ। साखरी के खेल भी वैसे ही उत्तम होते थे। दस-बारह जवान, पाँच छः स्त्रियाँ, आठ दस लड़के, पाँच छः घोड़े, दो भेड़ों के जोड़े, दो गदहे, बन्दर, बकरियाँ और भी न जाने कितना सब सामान उनके पास था। दोपहर के बारह बजे खेल शुरू हुआ तो दर्शकों की इतनी भीड़ होगई कि धक्का मुक्की करने पर भी आदमी वहाँ से सरकते न थे। दस दस, बारह बारह गाँवों के लोग साखरी का खेल सुनकर दौड़े आये थे। खेल समाप्त होते समय भीड़ में से घूमती हुई नटियों के हाथों के प्याले रुपयों से लबालब भर जाते थे। ऐसी थी वह साखरी ! और उसमें भी वह चार वर्षों के बाद जामगाँव में आई हुई थी। तब जामगाँव के लोगों की भीड़ का क्या पूछना !

गाँव के बाहर के मैदान में नट लोग कीले गाड़कर, उनमें डोरे बांध कर, पालें तान रहे थे। वहीं कीलों में बकरियां, बंदर और भेंड़े बंधे थे। दूसरी तरफ एक ओर बैल गाड़ी के बैल थे। आस पास के पेड़ों से घोड़े बंधे थे, बैलों और घोड़ों की पीठपर झूलें पड़ी थीं। कुत्ते इधर उधर भूंकते हुए डोलते थे। मुर्गी फड़फड़ करती हुई दाने चुग रही थी। नट लोग हड़बड़ी में थे। पत्थरों के चूल्हे बनाकर उनपर तवे रखकर नटियाँ रोटी बनाने की तैयारी में थी। साखरी को देखने के लिए गाँवों से भीड़ उमड़ी आ रही थी। मैदान के एक बगल में रास्ता बना कर गाँवों के लोग खड़े थे। कोई कोई औरतें खड़ी खड़ी अपने बच्चों को दूध पिला रहीं थीं। उघड़े नंगे बच्चे मुँह में अंगुलियां डाले एकटक देख रहे थे। परन्तु साखरी उनको नहीं दिखलाई देती थी। पहले ही से तने हुए एक सुन्दर तंबू में साखरी बैठी थी। कल मंगलवार था—और बाजार लगने वाली थी। कल ही साखरी का खेल भी था।

आखिर उन लोगों को उस दिन साखरी नहीं दिखलाई पड़ी। साखरी अपने भिन्न लिबासों के साथ तंबू में बैठी थी। लोगों में इस प्रकार की बातें चल रही थी।

रात के नौ बजे थे। चौबटिया के पास ही अंगीठी जल रही थी और उसके चारों तरफ बीस-पचीस व्यक्ति रजाई ओढ़ कर आग सेकते हुए बैठे थे। कोई बुड्ढा चिलम पी रहा था और बीच बीच में किसी लकड़ी से अंगीठी को खींच कर आग को

तेज करता जा रहा था। उस ज्वाला से प्रकाशित उसके चेहरे के अर्धभाग से एक प्रकार की उत्सुकता स्पष्ट दिखलाई पड़ती थी। अपनी ठिठुरी हुई अँगुलियों को ज्वाला की लपट के ऊपर रखते हुए एक व्यक्ति बोला,

"पिछली बार जब सावरी आई थी तब उसका बूढ़ा बाप उसके साथ था। पिछले साल हिवरा में खेल हुआ था तब उसका बाप पटकी मर गया। भाग्या नट मानो बिलकुल फौलाद का खंभा था। सावरी को वह बहुत प्यार करता था। वह भी बेचारा मर गया।"

दूसरा बोला, "और अभी अभी यह दूसरा जवान सावरी ने न जाने कहां से पैदा किया।"

पहिला बोला, "कहीं से नहीं यार!"

तीसरा एक बोला, "इस लिबाजी का और उसका प्रेम कैसे जुड़ा! वैसे तो सावरी बड़ा गुस्से बाज थी। उसके शरीर को छूने तक की किसी को हिम्मत नहीं होती थी। उस देवगढ़ के जमीदार की कैसी गत की थी उसने!"

"पर इस लिबाजी के साथ उसने शादी वादी क्यों नहीं करली?" चिलम का धुआं छोड़ते हुए एक बुड्ढे ने पूछा।

"यह कौन जाने। परन्तु खोद खोद कर यह सब पूछने की आवश्यकता ही क्या है। सावरी का उस पर अपार प्रेम है, इसमें संदेह नहीं!"

\+ \+ \+

दूसरे दिन बारह बजे साम्बरी का खेल शुरु होने वाला था दश बजे से ही लोग जगह घेर कर बैठ गये थे। लंगोट कसे हुए हृष्ट पुष्ट शरीर वाले तीन चार नट ढोल पीट कर जोर जोर से चिल्ला रहे थे। खूब भीड़ होगई थी। बाजार कभी का बंद होगया था। परकोटे की दीवार, घर की छतें और आस पास के पेड़ मनुष्यों से ठसाठस भर गये थे। एक ऊँची जगह पर जाजम बिछाकर गांव के इनामदार के लिए जगह रक्खी थी। जाजम के बगल में तीन चार कारकून और पटेल खड़े थे।

बाला साहेब इनामदार बड़े भारी रईस थे। आस पास छः गावों में उनकी जागीर थी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत जमीन जायदाद इनके पास थी। पिछले वर्ष उनके पिता मरगये। बुड्ढे के पास बहुत 'माया' थी ऐसा लोगों का विचार था।

बारह बजे के लगभग इनामदार आया, लोगों ने हड़ बड़ी में एक ओर हटकर उसके लिए रास्ता कर दिया। उसके साथ उसके दो चार मित्र भी थे। बाला साहेब एक भारी ऊनी ओवर कोट पहने हुए थे और सिर पर गुलाबी रंग का जरीदार साफा बड़ी ऐंठ से बांध रखा था। पीठपर लटकती हुई साफे की छोर धूप में चमक रही थी। उसके गौर वर्ण मुख पर ऐश्वर्य का तेज और तारुण्य का उन्माद झलक रहा था। अभी ही उगी हुई मूँछों क सिरों को बीच बीच में दाँतों से पकड़ने की उसे आदत पड़ गई थी। इधर उधर देखते हुए बाला साहेब जाजम पर जाकर बैठ गये।

एक सेवक ने छाता खोलकर उसके ऊपर तान दिया। नटों ने सामने आकर झुककर उसका मुजरा किया। खेल शुरू हुआ।

आरंभ में लड़कों की कसरत और कूद हुई। तदन्तर नटों और नटियों ने कसरत करके दिखलाई। उनके शरीर बेंत की छड़ी के समान एक दम झुक जाते थे–मानों वे हाड़ मांस के न होकर रबर से बनाए गये हों। दो तीन ढोल बज रहे थे। लोगों की गड़बड़ शान्त होगई थी; परन्तु खेल का रंग अब भी नहीं जमने पाया था, अभी तक साखरी नहीं आई थी। लोगों की नजर ऊपर ही ऊपर उसके तंबू की ओर मुड़ जाती थी।

इतने में "साखरी, साखरी" ऐसा कोलाहल शुरू हुआ। चार हजार गर्दनें जल्दी से उधर ही मुड़ गई। लिंबाजी के कंधे पर खड़ी होकर साखरी आरही थी! यह दृश्य अत्यन्त दर्शनीय था। तंग कसी हुई लंगोट में लिंबाजी की मोटी तगड़ी गोरी गठी हुई देह उसके नाम के समान ही चमक रहा था। उसके सुन्दर चेहरे पर मुसकान खिल रही थी। अपनी पसंद की हुई मैना उड़कर जिस प्रकार कंधे पर आकर बैठ जाती है उतना ही उसको साखरी का बोझ मालुम पड़ता था। लम्बे लम्बे डग भरता हुआ वह खेल के स्थान को तरफ आरहा था।

लिंबाजी के कंधे पर सीधी खड़ी हुई साखरी को देखते ही लोगों को ऐसा मालुम हुआ कि इतने बड़े दिन में आकाश में से बिजली मानो नीचे उतर रही हो। गहरे हरे रंग की जरी की किनारी वाली साड़ी में साखरी का गोरा चिट रंग और भी खिल

रहा था। उसकी जरीदार सोने के कामकी चोली इतनी तंग थी कि उसके भी सलछे, बाहुओं में निशान पड़ गये थे। जड़ाऊ पल्ले का उसने कच्छ बाँधा था। उसके गालों पर और ठुड्डी पर गोदने के गहरे हरे रंग के निशान उठे हुए मालूम पड़ते थे। वैसे ही हाथ पर के गोदने में "लिबाजी" ऐसे अक्षर थे। मोटे लगाए हुए पीले कुंकुम के नीचे भोहों के बीच काले काजल की बारीक बिंदी रखी हुई थी। वह उसकी काली काली बड़ी बड़ी आँखें! और वह उसका पीला जर्द रंग!! नागिन तरह की दृष्टि उस ओर पड़ते ही स्तब्ध रह जाती—ऐसा पानी था उसकी आँखों में। फुदकते हुए जंगली खरगोश के समान उसकी आँखों की पुतलियाँ भी इधर उधर नाचकर एकत्रित लोगों के हृदय में स्थान कर रही थीं। उनमें कोमलता थी क्या? छिः, तनिक भी नहीं। सौंदर्य? नहीं था यह कैसे कहा जा सकता है? परन्तु उसके नाम की मिठास उसकी आँखों में विशेष न थी, चार क्षण उसकी आँखों की तरफ टकटकी लगाकर देखने पर तो लोगों को ऐसा मालुम पड़ता था कि मानो अपनी ही आँखों में मिर्च लग गई हो।

खेल के स्थान पर आने पर उसने खत्र से अपनी भुजाओं में थाप दी और लिबाजी के कंधे पर से नीचे कूद पड़ी। दोनों ने सामने आकर इनाम दार को मुजरा किया। मैदान के बीच में आकर उसने अपना शरीर पीछे झुकाया। उसके द्वारा बनाई हुई अपने शरीर की कमान को देखने के लिए लोगों ने अपनी

गर्दनें ऊँची कीं। साखरी की कसरत शुरू हुई। हाथों के तलवों पर खड़े होकर, फिर पाँवों पर, फिर हाथों के तलवों पर—इस तरह वह इतने वेग से फिरने लगी कि उसके शरीर के चक्कर को देखते हुए लोगों की आँखें ही फिरने लगीं। उसकी कसरतों को देखता हुआ शिवाजी सिंह के समान खड़ा था-मानो साखरी यह जाल फैला रही है और वह सिंह उसमें से उछलकर निकल आया है।

तदनन्तर रस्सी के ऊपर की कसरत शुरू हुई। हम लोग जितनी फुर्ती से अपने घरों में नहीं फिर सकते इतनी फुर्ती से वे लोग रस्सी पर काम करने लगे। शिवाजी ने तो कमाल ही कर दिखाया, अपने कंधे पर एक के ऊपर एक तीन मनुष्यों को खड़ा कर वह रस्सी के ऊपर चलने लगा। बांस के एक सिरे पर एक घोड़े को उसने बांधा और दूसरे सिरे पर एक गधे को उलटा लटकाया। उस बांस को कंधे पर रखकर उसने उस रस्सी पर उनकी बरात निकाली।

तब आई साखरी, एक थाली रस्सी पर रखकर वह कमर में हाथ रखकर उस पर खड़ी होगई और थाली सरकते सरकते रस्सी के दूसरे सिरे पर पहुँच गई और फिर पीछे सरक आई। लोगों के हाथ ताली पीटते पीटते दुखने लगे। उनकी आंखों से देर तक टकटकी लगाने के कारण पानी निकल आया। उनकी गाढ़ी कमाई के पैसे घूमती हुई नटियों के प्याले में एक एक कर खाली होने लगे। और उधर दो पैरों के बीच में एक अंडे को

रखकर उस अंडे को खिसकाते खिसकाते वह रस्सी पर आगे सरकने लगी। तब क्या यह अब गिरेगी ही क्या इस दहसत के मारे लोगों ने मानों अपने प्राण मुट्ठी में ले लिए। पर साखरी जितनी सफाई से आगे गई थी उतनी ही सफाई से पीछे लौटी। यह देखकर उनको निश्चय हुआ कि साखरी के सामने और सरकस झक मारते हैं। रस्सो के सिरे तक साखरी के पीछे वापस आजाने पर लिबाजी ने उसके पैरों के बीच से अंडे निकाल लिए! साखरी नीचे कूद आई। लिबाजी ने वे ही अंडे उस पर न्योछावर कर दक्षिण दिशा की ओर फैंक दिये।

उसकी साखरी को लोगों की नजर लग गई थी।

सचमुच उसको नजर लग गई थी। बाला साहेब इनामदार आंखों में प्राण लाकर आंखों की समस्त शक्ति से मानो उसके खेल की तरफ न देखकर उसकी ओर देख रहे थे। साखरी ने उसके हृदय को मानो आकृष्ट कर लिया था। आस पास के लोग उसका उपहास कर रहे हैं इसका उसको ध्यान ही न था। बीच के विश्राम के समय साखरी और लिबाजी तम्बू की तरफ गये तब इनामदार का मुख खुला।

"है तो भई बड़ा भाग्यवान यह लिबाजी!"

इसके बाद मेंढों की टक्कर हुई और अन्यान्य नटों के थोड़े बहुत खेल हुए। पर उधर उसका लक्ष नहीं था। दोपहर बीती जारही थी—तो भी लोग ऊबे न थे। इतना ही नहीं वरन इतनी ही देर में सूर्य इतना कैसे ढल गया इसी का उनको बड़ा आश्चर्य हुआ।

साखरी और लिंबाजी के वापस आने पर उनके बचे हुए खेल शुरू हुए। एक बैल गाड़ी में बीस पचीस मनुष्य ठूंस ठूंस कर बैठाए और लिंबाजी ने वह गाड़ी अपनी चुटिया से खींची दाहिने हाथ से एक काफी बड़ा पत्थर फोड़ कर दिखला दिया। लिंबाजी की वह शक्ति देखने पर साखरी की तरफ कोई बुरी नजर से देखने का साहस क्यों नहीं करता इसका लोगों में आश्चर्य हुआ।

धूप तिर्छी पड़ने लगी थी। अब सिर्फ दो ही काम करके दिखलाने शेष रह गये थे। एक बाँस की खपच्चियों का पेटारा वहाँ लाया गया। एक मनुष्य उसमें अच्छी तरह बैठ सकता था। एक लम्बी डोरी लेकर लिंबाजी ने साखरी के हाथ पांव कस कर बांध दिए, उसे उठाकर उस पेटारे में डाल दिया और ढक्कन लगा दिया। एक लम्बा चौड़ा तीक्ष्ण फाले का भाला लेकर उसने उसकी धार पर अँगुली फेर कर उसकी जांच की। एक निंबू हाथ में लेकर उसने उसपर हलके हाथ से फाल रखा। निंबू की फांके अलग होजाने पर उसका समाधान होगया ऐसा प्रतीत हुआ। सब लोगों को एक बार चुप चाप देखने के लिए समझा बुझाकर उसने वह भाला पेटारे पर घुमाया। नटों ने ढोल रोक दिये। भाले के फाले पर अस्त होते हुए सूर्य की किरणें चमक रही थीं। लोगों ने अपनी साँसे एकदम रोक लीं। देवता को उसने मनाया हो इस प्रकार मानो नमस्कार कर उसने वह भाला कच से पेटारे में खोंस दिया। औरतें और

बच्चे रोने लगे। समझने बूझने वाले मनुष्य भी छीःछीः करने लगे। शिवाजी ने भाला निकाल लिया और पेटारे का ढक्कन खोला। खुले हुए हाथ पैरों से साखरी झट से बाहर कूद आई और रस्सी की लपेट एक तरफ फेंक दी।

अब एक ही काम शेष रह गया था। साखरी ने सामने खड़े होकर छाती पर हाथ रखकर ऊँचे स्वर से लोगों से कहा,

"लोगों, मेरी आँखों की ओर देखो।"

लोगों ने देखा। उसकी आँखे अद्‌भुत तेजी से चमक रहीं थीं। बाला साहेब से अब न रहा गया। अपने एक दोस्त को कुहनी से खोंचकर उन्होंने कहा,

"आह, क्या आँखें हैं ? केवल आँखों का ही चुम्बन ले लिया जाय। बस !"

इतने में साखरी सामने आकर बोली,

"अब अपनी इन आँखों को फोड़ लेती हूँ"

एक स्वर से आवाज आई,

"नहीं, नहीं, ऐसा न करो !"

"घबराओ नहीं ! मैं क्या करती हूँ यह अच्छी तरह देखो। यह मेरे हाथों में दो सुइयाँ हैं। इनकी नोंक ऊपर कर मैं इन्हें मिट्टी में रोपती हूँ। अच्छी तरह देखो।"

ऐसा करके और उन सुइयों की ओर पीठ करके वह खड़ी होगई और उसने अपना शरीर पीछे झुकाना प्रारंभ किया। उसने अपने हाथ कमर पर रखे थे। उसका शरीर जैसे २ नीचे झुकने लगा वैसे २ ही उसकी आँखें सुइयों के सिरों के पास आने लगीं। उसका सिर तिल तिल करके नीचे आरहा था। इन दोनों सुइयों के सिरों पर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और पलकों से वह उन सुइयों को मिट्टी में से निकालने लगी। उसके पीठ की कमान यदि एक बाल भर नीचे सरक आती तो ....। छिः! उसका तो विचार करने से भी रोंगटे खड़े होजाते हैं। बंद की हुई आँखों की पलकों से सुइयाँ पकड़ कर उसने अपनी पीठ की कमान को सीधा किया और सीधी खड़ी होगई। ऊँगलियों से उसने सुइयाँ निकाल लीं और उसकी आँखें खुल गईं। परिश्रम के कारण उसकी आँखों में पानी आगया था और वह इससे और भी सुन्दर मालुम पड़ने लगी थी। शेष नटियों ने फिर प्याले घुमाकर पैसे एकट्ठा करना प्रारंभ किया। खेल समाप्त हुआ।

साखरी पाल की तरफ जाने लगी। इतने में इनामदार के एक पटेल ने सामने आकर उससे कुछ कहा। वह लोगों के सामने प्याला लेकर कभी नहीं फिरी थी। उसका ऐसा रिवाज ही नहीं था। पर "इनामदार ने प्याला लेकर बुलाया है" ऐसा समाचार आने पर वह क्या करे उसे कुछ न सूझा! उसने लिंबाजी की तरफ देखा। उसने सम्मतिसूचक सिर हिला दिया

तो वह प्याला लेकर इनामदार के सामने गई और सीधी खड़ी रही। बाला साहेब ने उसकी ओर हँस कर देखा। कमर से लपेटा हुआ थैला उसने निकाला और उसके पकड़े हुए प्याले में उसने उसे उलट दिया। प्याला भर गया! डालते हुए पाँच सात रुपये नीचे पड़ गये। उन्हें वैसे ही रहने देकर सावरी वापिस लौटी।

"कल फिर खेल होगा। आज का खेल समाप्त..."

ऐसा लिबाजी के जोर से कहने पर लोग वापस लौटने लगे। नट लोग सामान बटोरने लगे। सावरी तंबू में जाकर बैठ गई। केवल बाला साहेब अपने दोस्तों के साथ उधर ही चक्कर काट रहे थे। उन्होंने लिबाजी को बुलाया और रात को सारी मंडली को लेकर महल में खाने के लिए आने का निमंत्रण दिया। इनामदार स्वयं भोजन का निमंत्रण दे रहे हैं तब लिबाजी "नहीं" कैसे कह सकता था। उसने हामी भरली। बाला साहेब महल की तरफ मुड़े।

\+ \+ \+

रात के नौ बजते बजते इनामदार के महल के सामने के चौक में नट लोग भर गये। स्त्री-बच्चों को लेकर वे आये थे। इनामदार ने लिबाजी का स्वागत कर उसको आसन पर बैठाया। उस समूह में उसे सावरी कहीं नहीं दिखलाई दी। उसने उसके संबंध में पूछ ताछ की। सावरी का सिर दुखने के कारण वह आ नहीं सकी ऐसा लिबाजी ने कहा। चौक में बैठने के पट्टे

बिछे हुए थे। उस पर नट लोग बैठे। छत से लटके हुए झाड़ फानूसों से सुगंधित तेल के दिए जल रहे थे। गद्देदार सोफा में बाला साहेब लिवाजी और बाला साहब के मित्र बैठे हुए थे। नौकर चाकर इधर उधर आ जा रहे थे। पीछे के चौक से आने वाली छौंक की सुगंध नाक में भर रही थी। बाला साहेब ने लिवाजी के खेल की दिल खोलकर प्रशंसा की। लिवाजी चुप बैठे रहे। उसको कुछ भूला हुआ मालुम पड़ रहा था।

थोड़ी ही देर में बोतल लेकर आने के संबंध में इनामदार का हुक्म हुआ। नौकरों ने पांच-पचास बोतलें सामने लाकर रखदीं। उन सफेद स्वच्छ बोतलों में से महुवे के फूलों की पीली मदिरा मोहक हास्य कर रही थी। दारू असली है या नहीं यह देखने के लिये बाला साहेब ने एक बोतल उठा कर जमीन पर उलट दी और उसमें दियासलाई लगादी। भक से वह जल उठी और मदिरा की पिपासा की ज्वाला लिवाजी के मुखपर झलकने लगी

बाला साहेब ने एक ग्लास और बोतल लिवाजी के सामने सरका दिया और स्वतः एक ग्लास में थोड़ी सी दारू उलटकर वे घुट घुट पीने लगे। लिवाजी ने ग्लास एक ओर हटाकर बोतल मुख से लगाली। शेष बोतलें चौक में रखने के साथ ही फूटते ही स्त्री पुरुषों के मुँहों में लग गई। उनका शोर गुल शुरु हो गया। जो जितनी बोतलें पीना चाहता था नौकर लोग उनको पूरा करते थे। लिवाजी की बोतल के डाट खुलते ही दूसरी बोतल उसके सामने आजाती थी और वह भी नीचे जाने

लगती। उसकी आँखें लाल और स्तब्ध हो गई थी। बाला साहेब का ग्लास अब भी समाप्त ही हो रहा था। मदिरा से भीगे हुए उनके होठों पर हास्य की रेखा स्पष्ट झलक रही थी। ग्लास नीचे रखकर वे लिवाजी से बोले,

"पीछे के चौक में तुम लोगों के भोजन की व्यवस्था की गई है। इसके समाप्त होजाने पर तुम भी वहीं चले जाना। एक बोतल समाप्त होने पर और चाहिये तो माँग लेना। संकोच करने की आवश्यकता नहीं, मैं जरा ऊपर हो आता हूँ।"

लिवाजी ने सिर हिलाया और बाला साहेब ऊपर गये।

थोड़ी ही देर में महल के पिछले दरवाजे से एक व्यक्ति बाहर आया और गांव के बाहर नटों के डेरे की ओर चलने लगा, महल में से नटों का कोलाहल सुनाई दे रहा था। वह व्यक्ति फुर्ती से चल रहा था। जगह और पास आई। तंबू दीखने लगे। एक बड़े तंबू में दीपक का प्रकाश धुंधला सा दिखलाई पड़ रहा था। वह व्यक्ति चोर के समान धीरे धीरे उधर ही मुड़ा। अगल बगल के पेड़ों पर से रात के कीड़ों की भयंकर आवाज सुनाई दे रही थी।

+ + +

महल में नट लोग जोर जोर से हँसते थे, बैठे बैठे खेलते थे, रोटी-तरकारी के लिए लड़ते झगड़ते थे और भोजन पर लंबे लंबे हाथ मार रहे थे। लिवाजी खाने को बैठा नहीं।

अपने सब लोग खाने को बैठे या नहीं यह एक बार देखकर उसने चार रोटियां और लोटा भर प्याज की तरकारी मांग लिया और जाने के लिए निकला। बाला साहेब के दोस्तों ने उसने वहीं खाने का आग्रह किया, पर उसने कुछ सुना नहीं। बाला साहेब कहाँ हैं यह विचारने पर उसने समझा कि वे सो गये होंगे। उनसे रामराम कहने के लिए कहकर वह महल के बाहर चला गया। और भी दो पत्थर हाथ से फोड़े होते तो लिवाजी को झटका न लगता: पर इन दो बोतलों के कारण तो वह झूमता जाता था।

परकोटे के पास आने पर उसको अपने कुत्ते का भूंकना सुनाई पड़ा। उसका प्यारा 'डेप्या' नामक कुत्ता कराह कराह कर भुंक रहा था। लिवाजी दौड़ते ही पाल के पास गया और उसने अंदर झांककर देखा। साखरी हाथ में सिर को मजबूती से रखे बैठी थी। उसने डेप्या के सिर पर हाथ फेर कर उसे शांत किया और भीतर गया। साखरी तंबू के सामने के पर्दे की ओर स्तब्ध दृष्टि से देख रही थी। समस्त सर्पजाति का विष उसकी आँखों में एकत्र दिखलाई देता था। उसके माथे पर बिखरे हुए बालों की लटें आई हुई थीं और उसके भरे हुए कठोर स्तन जोर जोर से ऊपर नीचे हो रहे थे। उसने लिवाजी की ओर देखा नहीं और लिवाजी ने कितनी देर तक उसे पुचकारा तो भी वह एक शब्द न बोली!

सहसा लिवाजी का नशा उतर गया

+ + +

दूसरे दिन फिर बारह बजते ही खेल शुरू हो गया। आज कल की अपेक्षा अधिक भीड़ थी। नट लोग जोर जोर से ढोल पीट रहे थे। आकाश में इने गिने बादल इधर उधर फिर रहे थे। इसलिए बीच बीच में उनकी छाया पड़ रही थी। इनामदार और उसकी मित्र मंडली कल की ही जगह पर बिछाये हुए पर आकर बैठ र ये। पहले दिन के शराब और भोजन से प्रसन्न हुए नट लोगों ने आज अधिक झुककर इनामदार को सलाम किया और खेल शुरू हुए।

पुनः कल की ही भाँति लिंबाजी के कंधेपर खड़ी होकर सांवरी ने खेल के अखाड़े में प्रवेश किया। आज वह जरी के चैक डिजाइन की गहरी काली धोती पहने थी। गहरी काली चोली के ऊपर उसके वक्षःस्थल का थोड़ा सा भाग और गर्दन इन दोनों का गौर वर्ण और भी खिल रहा था। आज उसने लाल कुंकुम की तिर्छी लकीर माथे पर लगाई थी। सांवरी के नीचे कूद कर उतरने के उपरान्त ये दोनों इनामदार के सामने गये और उसको सलाम किया। सांवरी ने तिरस्कार की दृष्टि से हँसकर बाला साहेब की ओर देखा।

उसके हास्य के कारण हिम्मत खुलने पर बाला साहेब ने पूछा।

"क्यों! कलका सिर दर्द उतरा या नहीं?"

"उतरा तो! ऐसी ही अचूक औसधि मैंने ली थी।"

ऐसा कहकर अर्थ पूर्ण दृष्टि से उसने उसकी ओर देखा और कबूतर की तरह चक्कर काट कर उसने कसरत करना प्रारंभ कर दिया ! बाला साहेब गंभीर एवं सुस्त से पड़ गये । भक्त मंडली ने उनकी पीठ ठोककर उनका अभिनंदन किया ।

पर आसपास के लोगों को यह प्रसंग कुछ चमत्कारिक मालूम पड़ा । उन्होंने शिवाजी की ओर देखा । उसका चेहरा कल उसी के द्वारा फोड़े हुए पत्थर की तरह निर्विकार था ।

खेल प्रारंभ होने पर साखरी बीच बीच में बाला साहेब की ओर कटाक्ष करती जा रही थी । वह धीरे धीरे आनंद के मारे फूल रहा था ! पर लोगों को आज का खेल कुछ वैसे ही—साधारण सा—प्रतीत हो रहा था । रस्सी पर के खेल में दो पैरों के बीच में ठीक ठीक तरह से अंडे को फिराने वाली साखरी ने आज अंडे की ही भांति अपने शील की रक्षा की थी-इस बातका उनको पूर्ण रूप से विश्वास था । पर आज यह क्या ? उस (शील रूपी) अंडे में क्या आज चोट पड़ेगी ? आज तक कड़वी समझी जाने वाली साखरी (शक्कर) आज के बाद लोगों के मुँह में घुलेगी क्या ? लोग इसकी चर्चा करेंगे क्या ? अरे ?

कल की ही भांति खेल शुरु हो गये थे । पर पहले दिन के खेल जिन लोगों ने देख रखे थे उनके लिए विचित्रता लाने के लिए कुछ निराला ही कार्य क्रम था । आज शिवाजी दाँतों में रस्सी पकड़कर मनुष्यों से खचाखच भरी हुई बैल गाड़ी को बड़ा

वह खींच लेगया। ठीक उसी तरह ठसाठस भरी हुई लोहे के पहियों की गाड़ी पांच छः नटों ने शिवाजी की छाती परसे निकाल दी, शिवाजी आज अपने ताकत के खेल अधिक साव-धानी से दिखला रहा था। पत्थर फोड़ने के लिए निरंतर ५-६ मिनट लेने वाले शिवाजी ने आज हाथ के चार झटके देकर एक मिनट में पत्थर के टुकड़े कर दिए!

रस्सी पर के खेल होने के उपरान्त एक नवीन खेल प्रारंभ हुआ। एक मोटा लकड़ी का तख्ता खेल के अखाड़े में लाकर खड़ा कर दिया गया। शिवाजी ने २५-३० तीखी धार वाले छुरे बाहर निकाले और तीन तीन चार चार छुरे हवा में फैंक कर वह हाथ में पकड़ने लगा। इसके बाद लोगों की ओर मुंह कर उसने कहा,

"लोगो, आज एक नया खेल मैं तुम्हें दिखाता हूं। कल के खेल में साखरी को पिटारे में बंद कर तुम्हारी नजर बंदी करके मैंने उसमें भाला मारा था। पर आज खुले खुले तुम्हारी आँखों के सामने ही इन छुरियों से मैं उसे मारता हूँ। ऐसा शक्कर-निबू का खेल—साखरी और शिवाजी का खेल—तुम लोगों को फिर कभी देखने को न मिलेगा।"

इतना कह कर वह छुरी की धार देखने लगा। आज बोल-ते हुए उसकी आवाज बैठ गई थी। ढोल रुक गये थे। लोग चित्र सरीखे स्तब्ध थे। उसने फिर कहा

"पहले तुम लोगों को इस छुरी की धार दिखाता हूँ। टेप्या, इधर आ।"

पूँछ हिलाता हुआ उसका प्यारा कुत्ता टेप्या दौड़ता हुआ आया। उसकी दृष्टि में सात जन्मों का भय भरा हुआ दिखलाई दे रहा था।

"दोनों पैरों पर खड़े हो जाओ!"

अत्यन्त कर्कश स्वर से शिवाजी ने टेप्या को आज्ञा दी। टेप्या पिछले पैरों पर खड़ा होगया। थर थर काँपते हुए उसने कातर दृष्टि से अपनी स्वामिनी की ओर देखा। सावरी ने दूसरी तरफ गर्दन फिराली। यह क्या होरहा है यह लोगों के लक्ष में आते न आते शिवाजी के हाथों से छुरी छूटी और टेप्या की छाती में आर पार जाकर घुस गई। एक हिचकी देकर टेप्या ने वहीं के वहीं प्राण छोड़ दिए। लोगों के शरीर में रोमांच हो आया। आज तक शिवाजी ने अपने पालतू पशुओं को जरा भी कष्ट दिया हो ऐसा सुनने में नहीं आया था। और टेप्या तो उसका अत्यन्त प्यारा कुत्ता था। फिर धार दिखाने का कौनसा ढंग था।

शिवाजी की आँखों में खून चढ़ गया था। उसके चेहरे पर शिकार देखने के लिए निकले हुए शिकारी की तरह चेष्टाएँ दिखलाई दे रही थी। वह चिल्लाया,

"सावरी, वहाँ खड़ी हो जा।"

साखरी दौड़ती हुई जाकर उस तख्ते के सामने खड़ी होगई उसके सामने ही ढेप्या का शव पड़ा था। ढेप्या के रक्त से भरे हुए गड्ढे में उसके पैर का अँगूठा डूबा था। लिंबाजी हाथ फेर कर छुरे की धार देखने लगा। हर एक का कलेजा तेजी से धड़क रहा था। जिस प्रकार धुआँ लगाने पर मधुमक्खी अपने छत्ते से बाहर निकलने लगती हैं उसी प्रकार उसके हाथों से छुरे छूटने लगे। हवा में जाते हुए उनके फाल चमचमा रहे थे। उन पर लोगों की नजर ही न जमने पाती थी। साखरी के शरीर के चारों ओर बंधे हुए अंतर पर वे छुरे उस तख्ते में खच् खच् घुसने लगे। थोड़े ही समय में उसकी चारों ओर छुरों का जाल होगया। अब एक ही छुरा रह गया। एक क्षण भर रुक कर लिंबाजी ने उस छुरे की तरफ देखा। हाथ ऊपर उठना और उसने साखरी की छाती पर लक्ष्य किया। उसकी आँखों में आवेश (क्रोध) की आग सुलगी थी। सनसनाती हुई वह छुरी छूटी और............और साखरी की बाँई भुजा को रगड़ती हुई तख्ते में घुस गई। उसकी चोली फट गई और भुजा में से रक्त की बारीक धारा बहने लगी। कभी न चूकने वाला लिंबाजी का लक्ष्य चूक गया। तो भी अच्छा हुआ— थोड़े में ही निबट गया।

दो चार नट आगे आए। साखरी ने उनको पीछे हटने का हाथ से संकेत किया और वह आगे बढ़ी। ढेप्या के शव को लांघ कर वह सामने आई और नीचे झुककर जमीन पर से मुट्ठी भर मिट्टी उठाकर उसने उसे रक्त निकलने वाले स्थान पर

खसाखस भरली। पीछे मुड़कर उसने एक बार डेग्या की ओर देखा। कांच के समान उसकी उघड़ी हुई निर्जीव आँखें मानो अब भी अपनी स्वामिनी से क्षमा याचना कर रही थीं। मेरे तन पर पहरा करने में तूने—चाहे एक ही मिनट के लिए क्यों न हो—त्रुटि कर अपराध किया हो। इसलिए मैं तुझे क्षमा करूं क्या? ऐसा ही मानो वह अपनी आँखों से डेग्या से पूछती थी। डेग्या को वहाँ से हटाने का उसने एक नट को संकेत किया। वह नट उसे टाँग पकड़कर खींचते हुए जल्दी से खींचते हुए उठा लेगया।

लोगों के रोंगटे खड़े होगये। नट लोगों को भी आज का इन दोनों का तेज अनोखा ही दिखलाई देता था। खेल के अखाड़े पर आज रक्त का छिड़काव हुआ था और वह भी दो बार दोनों के रक्त की। ईश्वर भक्त लोगों के मनमें सोचने न सोचने योग्य विचार आने लगे। चोट.....................

अब कल सबसे अंत में जो खेल हुए थे वे ही दोनों खेल होने अवशेष से रह गये थे। पेटारा अखाड़े में लाकर रख दिया गया। हाथ पैर बांधने को लम्बी डोरी लेकर शिवाजी पेटारे के पास खड़ा होगया। साखरी की भुजा से रक्त अब भी थमने नहीं पाया था। आँचल से रक्त पोंछती हुई वह एक ओर खड़ी थी। थोड़ी देर रुककर शिवाजी ने उसे हाँक मारी—

"साखरी—"

गुरुत्वाकर्षण का नियम भी एकाध बार चूक कर सकता है, परन्तु शिवाजी की पुकार साखरी की उपस्थिति नहीं चूक सकती—

—जीतेजी सावरी लिंबाजी की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकती ; पर आज ऐसा न हुआ। उसने लिंबाजी की पुकार पर मानो ध्यान ही नहीं दिया और वह निश्चिंत होकर चलती हुई इनामदार के सामने खड़ी होगई और बोली,

"इनामदार साहब, यह देखो।"

उसने अपनी चोली का फटा हुआ टुकड़ा एक ओर कर उसको अपने गोरे-चिट भुजा परके घाव को दिखला दिया। फिर वह कहने लगी,

"अब तुम्हीं कहो मैं पिटारे में कैसे बैठूँगी और इस हाथ से रस्सी के बंधन कैसे खोलूंगी ?"

"आज पेटारे का खेल न करो तो कैसा ?"
बाला साहेब उस घाव की ओर देखकर दयापूर्वक बोले।

आस पास के लोगों ने भी उनका साथ दिया ; लिंबाजी अब भी वैसा ही खड़ा था। उसकी ओर बड़े दुःख से देखते हुए बाला साहेब फिर बोले,

"तो लिंबाजी से मैं कहता हूँ।"

"उससे कहने से कुछ भी लाभ होने का नहीं। क्योंकि पेटारे का खेल हमें करना ही चाहिये। "प्रत्येक कर यदि पेटारे का खेल नहीं किया जायगा तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा, ऐसी हमारी देवी की हम को शपथ है। इसलिए यह खेल होने के अतिरिक्त और कोई इलाज भी नहीं।"

शब्द शब्द पर जोर देकर साखरी ने कहा।

"तो किसी दूसरे को पेटारे में बैठा कर होने दो यह खेल! तुम कष्ट मत करो,"

बाला साहेब बोले।

"तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु पेटारे में बैठने वाला मनुष्य कोई बड़ा आदमी—राजयोगवाला—होना चाहिये ऐसी हमारी देवी की शर्त है और आज यदि यह खेल नहीं हुआ तो, इनामदार साहेब, हमारा सर्वनाश निश्चय ही हुआ समझिए।"

साखरी सिसक सिसक कर रोने लगी। सब दर्शक लोग खंभे की तरह स्तब्ध थे। साखरी की आँखों से आँसू आना यह तो आश्चर्य की बात थी!

साखरी 'राजयोगवाली' थी इसमें किसीको भी शंका नहीं थी; परन्तु अब इस फंदे से छूटने का मार्ग कौनसा था? किसी को भी कुछ नहीं सूझता था, आँखें पोंछ कर साखरी फिर बोली,

"इनामदार साहेब, अब इसका एकही उपाय है, दूसरा राजयोग वाला पुरुष अभी ही अभी मिले तभी काम बन सकता है। इस खेल में कोई धोखा नहीं है यह कल सबने देख ही लिया है। और, इनामदार साहेब, इन हजारों लोगों की भीड में दो ही राजयोग वाले मनुष्य हैं-एक मैं और.........
दूसरे तुम।"

सुनने के लिए बैठे हुए लोगों को एक दम धक्का सा लगा। उनमें खुस-पुस होने का अवकाश न देकर सावरी ने अत्यन्त मीठा हास्य करके बाला साहेब की ओर देखा और अत्यन्त दीन वाणी से उसनें कहा,

"मालिक, मुझे ऐसा प्रस्ताव तुम्हारे ऐसे बड़े आदमी के सामने नहीं रखना चाहिए। परन्तु मेरे लिए.......मेरे लिये तुम इतना ही करोगे क्या ?"

सावरी के वह हास्य और उस की वह कातर दृष्टि देखकर बाला साहेब पिघल गये। बाला साहेब अत्यन्त निधड़क छाती के-निर्भिक एवं साहसी-पुरुष थे। भय कैसा होता है यह उनको मालूम नहीं था। प्रश्न केवल इतना ही था कि नटों के खेल में हमारे ऐसे इनामदार को भाग लेना चाहिए अथवा नहीं। परन्तु सावरी के कटाक्षों में भूलकर वे अपनी इनामदारी भूलगये। वे तुरन्त उठकर खड़े होगये और ताव में आए हुए मनुष्य के समान सावरी के पास आकर बोले,

"मेरे लिए है वह काम। चल !"

'चलिए, मैं आपको वह युक्ति बतलाती हूँ।

उनका हाथ पकड़ कर सावरी उनको एक ओर लेगई और उनके कानके पास मुख लेजाकर उनसे कुछ कहा। बाला साहेब ने गर्दन हिलाई। तदनंतर दोनों जने पेटारे के पास आये। सावरी ने उनके हाथ अब भी अपने हाथों में ले रखे थे। वह हाथ हल्के से छुड़ाकर वह चलते चलते कहने लगी

"परन्तु, हमारी यह युक्ति इनके बाद आप किसी को बतलाओगे तो नहीं न ? ऐसा करोगे तो आपको मेरे सिर की सौगन्ध है !"

"राम, राम !"

शिवाजी ने सामने होकर एक मिनिट में उनके हाथ पैर बांध दिए और उनकी गठरी पेटारी में डालकर ऊपर से ढक्कन लगा दिया, कुछ न कुछ इसमें रहस्य है ऐसा लोगों को मालूम हो रहा था, परन्तु इस चलते हुए काम को रोकने का साहस किसी में नहीं था। सावरी की देवी ने न जाने उनपर क्या जादू कर डाला था !—वे सब मंत्र मुग्धसे होगये थे। और देखने की इल्लत न लेकर (झंझट में न पड़कर) शिवाजी ने भाला खड़ा किया, नटों को ढोल पीटने के लिए कहा और वह भाला झटसे पेटारे में खोंस दिया। लोगों को पेटारा जरा हिलता हुआ सा दिखलाई दिया।

ढोल रोकने का हाथ से संकेत कर सावरी पेटारे के पास गई और ढक्कन के पास मुख लगाकर बोलने लगी।

"इनामदार साहेब बाहर आते हैं क्या ? क्या ? अब भी क्यों नहीं ? घर पर ही जाकर निकलोगे क्या ? अच्छा ! परन्तु जल्दी आना। मैं तब तक सुइयों का खेल करती हूँ। आखिरी थाले पर तुम्हें उपस्थित होना ही चाहिए।"

पीछे फिर कर उसने सुइयाँ बाहर निकालीं और उन्हें मिट्टी

में रोपा। लोगों में गड़बड़ शुरु होने लग गई थी। एक शब्द भी न बोलकर उसने अपने शरीर को कमान की तरह झुकाना आरंभ कर दिया। आँखें सुइयों के निकट आईं और बंद हुए। बाईं ओर की सुई न जाने किस तरह से—पलक की पकड़ में न आकर एक ओर गिर गई थी। आज खेल का मुहूर्त ही अच्छा नहीं पड़ा था। सभी खेलों में चूक होरही थी! उस सुई के पीछे न पड़कर दाहिनी आँख से वह दूसरी सुई उठाने लगी। अरे यह क्या? भुजा में मालूम पड़ता है दर्द होने लगा? साखरी और भी नीचे क्यों झुकी? अरे बापरे!

साखरी खड़ी होगई। उसकी दाहिनी आँख रक्त से लथपथ होरही थी और मुँह पर रक्त की धारा बह रही थी। साखरी की आँख फूट गई ऐसा लोगों में एकाएक हल्ला होगया। लोग इस समय तक इनामदार को पूर्णतया भूल गये थे और लिंबाजी कहाँ था? साखरी के मुख पर से रक्त पोंछे कौन? लिंबाजी, ओ लिंबाजी, कहाँ हो?

दाहिनी आँख में हाथ लगाकर साखरी तीर के समान दौड़ती हुई वहाँ से भागने लगी। नट लोग अब भी मुँह फाड़ फाड़ कर देखते खड़े रहे। साखरी भीड़ में घुस गई। लोगों ने झट पट अगल बगल खिसककर उसके लिए रास्ता कर दिया। लोगों की गर्दनें उसी ओर मुड़ी। घोड़े की लगाम हाथ में पकड़े लिंबाजी खड़ा था। दौड़ती हुई जाकर साखरी उछल कर घोड़े पर सवार होगई झट से उछल कर लिंबाजी भी उसके पीछे

बैठ गया और घोड़े को चाबुक मारी। गाँव के रास्ते पर से घोड़े के टापों की आवाज आने लगी।

टप्—टप्—टप्………

+ + +

लगभग आधे घंटे में एक जंगल में शिवाजी ने घोड़े के वेग को कम किया। उसके बाएँ हाथ में लगाम थी और दायाँ हाथ साखरी की कमर के चारों ओर लिपटा था। घोड़े के मुंह से फेन निकल कर नीचे गिर रहा था। अँधेरा घना होता जा रहा था।

रक्त से सने हुए अपने भयंकर मुँह को शिवाजी की ओर फेर कर दाँत पीसती हुई साखरी बोली।

"उस दुष्ट से छुई हुई अपनी आँख मैंने फोड़ दी। मैं सोई न होती तो उतना भी करने की उस सुर की हिम्मत न पड़ती। और ठेप्या तक………"

उसको बीच ही में रोककर शिवाजी बोले,

"जाने भी दे उस बीती हुई बात को। तू अब पश्चाताप न कर।"

उसके स्वर में करुणा और कातरता थी। साखरी शांत होकर थोड़ी देर में बोली,

"परन्तु शिवा, मेरे शिवा! मैं तुझे अब पहले के समान सुन्दर दिखलाई दूँगी क्या रे?"

"मेरी साखर (शक्कर) मुझे पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी (मीठी) लग रही है।

———

जैसा दीखता है वैसा नहीं

"इस कहानी की प्रत्येक घटना से यही प्रतीत होता है कि जैसा दिखलाई देता है वैसा वास्तव में होता नहीं"।

संध्याकाल के सात बजे के लगभग का समय था। एक ऊँचे स्टूल पर बैठे हुए बाईं हथेली पर बायाँ कपोल रखकर "यूनिवर्सल स्टेशनरी मार्ट" के अधिकारी पांडोबा, बड़ी बड़ी मूँछों वाले, अपनी दाहनी तर्जनी और अंगूठे से दाढ़ी की खूंट उपाड़ने का काम कर रहे थे। सारे दिन भर में जब कुल सवा सात आने की बिक्री हुई तो दो मंजिले स्थान में ठूंस ठूंस कर बसे हुए "युनिवर्सल स्टेशनरी मार्ट" के अधिकारी दूसरा काम करें तो क्या! और उसमें भी फिर उधारखाते के ५००) पाँचसो रुपये उधार में से चालू महिने में अनुमानतः छब्बीस रुपये वसूल हुए! तिस पर तारीफ यह कि ये जो उधार लेने वाले परिवार थे वे सब बहुत शिष्ट व प्रतिष्ठित परिवार के थे, यानी अपने ही पैसे उन पर आते हैं और वे भी अत्यन्त दीनता और नम्र स्वर से माँगने पड़ते हैं! गरीब को उधार देकर उससे वसूल करने के लिए उस पर डांट डपट भी की जा सकती है और उसकी ओर हुए उधार के यदि चार आठ आने डूबते भी हों तो उसके मुंह पर ही चिल्ला चिल्ला कर उसे फटकारने पर भी वह उलटे मारपीट न करके लज्जित होकर सहन करेगा। लोगों के सामने ही ऐसे लोगों को

दो-चार उली कटी सुनाने से कम-से-कम मन को तो संतोष होता है। पर १००–२०० की प्रेक्टिस होने वाले वकील के पास से उधार के १५–२० रुपये निकाल लेने तक की सहूलियत नहीं होती !

सात तो बज गये ! अब ग्राहक भला क्या आएँगे ! दुकान के चार महीने के रुके हुए भाड़े में से आखिर दो महीने का भाड़ा तो आज रात को दुकान बंद करने के पहले ही दे दूँगा ऐसा पांडोबा ने घर वाले के नौकर से कह रखा था। इस लिए झट से दुकान बंद कर दूँ और कल उसके पूछने पर " तू कल समय पर क्यों नहीं आया ? " ऐसा उलटे उसी को फटकार बतादूं ऐसा विचार उसके मनमें था। पांडोबा ने फिर एक बार गोलक में से रुपया पैसा गिन कर देखा। एक चवन्नी, तीन इकन्नियां और एक पैसा ! बस ! और घर में खाने वाले चार पांच बच्चे कच्चे एवं सौ चिमा ! बाईं मूंछों पर प्रेम से एक बार हाथ फिरा कर वह विचारने लगा कि प्राप्ति बढाने का कोई उपाय सूझता है क्या ?

इतने में कहीं से किसी के पत्थर मारने के कारण दाईं टंगड़ी को लटकाए हुए एक बेदुम का कुत्ता कैं कैं करता हुआ उसके सामने से ही गुजरा। गल्ला यदि सवा सात आने के बदले सवा सात रुपये होता तो पांडोबा पेट पकड़ पकड़ कर हंसता। इस समय भी उसको हंसी तो आई ही ! पर वह हंसी हंसी न थी—खीस निपोरना था। केवल अपने को हंसना चाहिये

इस लिए हंस दिए। इतने में ही सीधी मोमफली क समान नाकवाली १४ वर्ष को एक लड़की दुकान की सीढी के एवज में काममें आने वाले खाली देवदार के बकस पर चढी और अपनी अंगिया की जेब में से एक रुपया निकाला। पांडोबा को मालुम पड़ा कि " मिलारे, आखिर मिलातो शिकारी " पांडोबा के हाथों में रुपया दूर से देकर लड़की बोली " चार आने की एक फाउंटेन दो। "

पांडोबा ने अँगूठे पर वह रुपया बजाया:- वह खोटा निकला।

" दूसरी दुकान में अच्छे फाउंटेन मिलते हैं!" यह कह कर उसने लड़की को चलता किया और स्वत: तिरस्कार पूर्वक बड़ बड़ाने लगा,

" जैसे मानो सारे लुचों की दुकान यही हो। पाठशाला में ये लड़कियाँ यही सब सीखती हैं!"

आज कल सवा महिने की हुई हुई लड़की। कुमुद को बड़ी होने पर हाइस्कूल में बिलकुल न भेजेगा इसका उसने अभी से पक्का निश्चय कर लिया! पांडोबा ने और एक बार गला गिना उसमें एक अन्नी चिकनी और कटी हुई मालूम हुई। दांत पर दांत पीस पीस कर वह बोला,

"कैसा पाजी होगया है यह संसार!"

इतने में एक दुबली पतली सी मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी होगई। इस व्यक्ति का नाम था भिलोबा वाघ, यह गृहस्थ

'विजय हाईस्कूल' में हेडक्लार्क था। पान तमाखू से गन्ध भरे हुए मुख से जितनी स्पष्ट आवाज आ सकती थी उतनी ही से उसने पूछा,

'कहो पीडु सेठ ! दुकान कैसी चल रही है ! अब छमाही परीक्षा प्रारंभ होने वाली है इसलिए कागज की तो बहुत ज्यादा ख्पत होगी न ? बडा मजा है भाई तुम सेठ लोगों का !"

हैडमास्टर का वैसा हुकम आने के कारण लगभग सभी ही विद्यार्थियों ने कागज अपने पास से ही (हमारे-पिलोबा के पास से ही) खरीदा था और उसमें उसको लाभ भी बहुत अच्छा हुआ था यह पिलोबा से छिपा न था। इतने दिन तक शाला का अपना 'स्टोर' नहीं था और यदि वह खुला तो पिलोबा को बहुत झंझट उठाना पड़ेगा। इस लिये उसे यह एकदम नापसंद था। दिमाग लड़ाकर जितना पैसा वह सोच सकते थे उतना उनको अवश्य चाहिये था। परन्तु स्टोर खुलना उनको इसलिए पसंद न था कि उसके खुलते ही जच्चा की तरह उसकी संभाल भी उसे ही करनी पड़े और उसकी हानि भी उसे ही उठानी पड़े। इसकी अपेक्षा चार दुकानदारों से बीच बीच में कमीशन के गोले खाकर उन्हें स्वस्थता से पचाना पचपन की इस उतरती अवस्था में भी उसे सुखकर होता था। जो दुकानदार उसे कमीशन देता उसी दुकानदार से माल लेने की अप्रत्यक्ष प्रेरणा वह लड़कों को करता था। क्योंकि पिलोबा थे हाईस्कूल के "दादा"। कोई विद्यार्थी इनकी इच्छा के विरुद्ध

चला कि वार्षिक परीक्षा में और अध्यापकों की संगत और मत से वह उसे "देखलेते थे !" और वह देखना बाघ का ही देखना होता !

पांडोबा की दुकान जोर से चलती हुई देखकर पिलोबा के मुँह में पानी भर आया। इतने दिन तक पांडोबा उसको जो कमीशन देता था उसने उसका एकदम दुगुना कमीशन उससे मांगा था। पांडोबा चिढ गया, कि चाहे वह कितनी ही भलाई वह दिखावे—चाहे वह कितना ही सब्ज बाग दिखावे—तो भी पिलोबा को एकदम दुगुना कमीशन देना तो उसकी सामर्थ्य के बाहर था। उसने पिलोबा का मन रखने का प्रयास किया। साथ ही साथ मुझे इतना कमीशन देना किसी प्रकार भी शक्त नहीं यह भी अत्यन्त विनय से कहा, परन्तु पिलोबा पर उसके शब्दों का कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। पांडोबा अधिक कुछ भी देने को तैयार नहीं है यह देखकर अत्यन्त मीठे स्वर में पिलोबा बोला,

"अच्छा बाबा, अच्छा ! तुम्हारी मर्जी !"

और आठ ही दिन के भीतर हाईस्कूल में स्टेशनरी माल का स्टोर खुल हो गया, अर्थात लड़के आवश्यक वस्तुएँ स्टोर से ही खरीदने लगे। पांडोबा के माल की खपत में एक दम कमी होने लगी और एक दिन तो बिक्री केवल सवा सात आने हुई।

इतने दिन तक पिलोबा उसे कभी 'सेठ' नहीं कहता था, केवल पांडू कहता था। 'पांडू' का रूपान्तर 'सेठ' में होना

पांडोबा को बहुत महँगा पड़ा और इस 'सेठ' का रूपान्तर और क्या होने वाला है इसकी उसे अत्यन्त चिन्ता होने लगी। क्यों पिलोबा एक व्याधि थी। अगर यह विपरीत हुआ तो किस तरह से छलेगा इसका कोई नियम न था। और उसदिन की सवा सात आने की बिक्री से तो पांडोबा का जी कस सला रहा था। पिलोबा के प्रश्न का उसने हाथ जोड़कर उत्तर दिया,

"बहुत उत्तम चल रही है महाराज ! यह मेरे साथ निष्कारण छल हो रहा है !"

पांडोबा के शब्द पूर्णतया सुन लेने की भी सभ्यता न दिखलाकर "अभी तूने देखा ही क्या है ? दुकान में ताला न लगवा दिया तो मेरा नाम पिलोबा नहीं !" इस अर्थपूर्ण दृष्टि से पांडोबा की ओर देखकर पिलोबा वहाँ से सटक गया।

\+ + +

पांडोबा की वह कष्ट मुद्रा देखने के कारण हुए आनंद के भाव में उसे यह भी नहीं मालुम हुआ कि वह अपने घर कब पहुँचा। आज मैंने पांडोबा को कैसा नीचा दिखाया इसका वर्णन उसने सौ बायोरा बाई से खूब हाथ नचा नचा कर सानुनासिक स्वर में बोलते हुए विस्तार से किया और वह बायोराबाई तक अकड़ से फूल गई, "है ही ऐसा वह मुआ कलूटा पांडोबा। जो हम मांग रहे थे वही कमीशन वह दे देता तो ! पर मुए बुरे दिन याद आए ! अब वह रोते हुए बैठे हैं !"

दादा की यह बहादुरी सुनकर उसकी लड़की "बाबी" भी

हँसने लगी। बाबी इस साल मैट्रिक में थी। तीव्र बुद्धि का होने के कारण वह आज तक प्रत्येक परीक्षा में पास होती आई थी और इस हिसाब से वह इस साल मैट्रिक पास हो ही जायगी ऐसा दादा को पूरा विश्वास था। "सुन्दर लड़की पहले ही झपाटे में मैट्रिक पास हो जाती तो थोड़े ही पैसों में उसे सुन्दर 'वर' मिल जाता और बैंक में से रुपयों की गठरी उसे न निकालनी पड़ती", यह विवाहशास्त्र संबंधी अर्थशास्त्र वह आज पिछले दो वर्षों से बाघोण बाई और बाबी को पढ़ा रहा था। पहले ही वर्ष में और यथासंभव अच्छे अंकों में उसे उत्तीर्ण होना चाहिए इस विचार से वह उसे घर का थोड़ा भी काम करने को न कहता।

सुन्दर चार-पांच सौ रुपये वेतन पाने वाला जवांई मिलेगा तो विवाह यज्ञोपवीत के अवसर पर मैं कीमती जरी की धोती पहन कर बड़ी प्रतिष्ठा से औरतों से मिलूँगी, चैत्र में हल्दी लेने के लिए तो मैं टांगे में बैठकर जाऊँगी, दिवाली के त्योहार पर मैं दामाद को घर बुलाऊँगी तो वह हमारे दरवाजे क सामने अपनी निज की मोटर में से उतरेंगे और कुतूहल से मोटर के चारों ओर एकत्र हुई आसपास की स्त्रियाँ जब—— "बाघोणबाई के जवांई अपनी निज की मोटर में आये हैं" ऐसा कहेंगी तब मैं उनकी ओर कितने अभिमान से देखूँगी, यह सब मधुर चित्र उसके मनमें खिंचने जाते थे। बाबि पर उन दोनों के इतना लाड़प्यार (दुलार) होने का एक दूसरा कारण यह भी था कि अब तक मात लड़के लड़कियों में केवल मात्र

एक यही लड़की बची थी। उनका सर्वस्व उनकी बाबी ही थी! तब वह मैट्रिक होकर एक दिन उसका ठाट बाट से ब्याह होजाय तो पिलोबा के जीवन की इतिकर्तव्यता होजाय—ऐसा ही था।

+ + +

पांडोबा दुकान से जो घर आया तो अत्यन्त चिढ़ी हुई मनस्थिति में। दरवाजे में पैर रखते ही अत्यन्त तार स्वर में,

"एक था राSSSजा SS एSSक थी राSSनी SSS"

यह पद गाते गाते उसका चिरंजीवि नं० ३ उलटी थाली पर फूंकने की नली पीट रहा था और उसकी बहिन उससे भी ऊँचे स्वर से उसका साथ दे रही थी। और पेट में धक्का लगने की सी बात तो यह थी कि जिले के एक गाँव के हाईस्कूल के मास्टर उसके साले की नौ वर्ष की लड़की उनके साथ २ ऊधम कर रही थी। क्योंकि लड़की यहां है इसलिए उसके मां बाप को भी यहां आया हुआ होना ही चाहिए यह स्पष्ट था। चिरंजीवि की ओर एक बार जोर कर देखने के साथ ही "राजा और उसकी रानी" हवा में अदृश्य होगये और तुरन्त ही चिरंजीवि नं० ३ गाल मलते हुए रसोई घर में अदृश्य होगये। रसोई घर के पास जाकर कान से सुनने पर उसको मालुम हुआ कि उसका साला सकुटुम्ब आया है।

अरे क्या? एक दुःख से निस्तार पाने के पहले ही दूसरी खट से आ खड़ी हुई! यह क्या बला सिर आ पड़ी? पूछताछ करने पर यह मालुम हुआ कि स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण

डाक्टर ने उसके साले को हवा बदल करने की सूचना दी थ और वह सूचना उसके साले ने तुरन्त कार्य में परिणत कर दी "पत्र से पहले ही हमें सूचना क्यों नहीं दी ?" ऐसा सहज भाव से पूछने पर उसने निधड़क यह उत्तर दिया,

"तुम कोई अड़चन निकाल कर इनकार कर जाते तो ! तब निश्चय हुआ कि यह सब कुछ नहीं। सहसा जाना ही सबसे उत्तम ! निश्चय होने पर इसने भी आग्रह किया कि तुम्हारे ही यहाँ जावें। तब सोचा कि चलो फिर !"

पांडोबा का साला लगभग महीना डेढ़ महीना उनके पास रहा। उसको मालुम होगया कि पांडोबा की स्थिति अब पहले के समान नहीं है। चार पांच वर्ष पहले पांडोबा जहां लात मार देता वहीं से पानी निकालने का साहस रखने वाला उसको देखा था। बिक्री होती थी, पति पत्नी दोनों बच्चों को लेकर सप्ताह में एक दो बार शान से सिनेमा भी जाते, जो मनमें आती थी खाते पीते भी थे। इस प्रकार सब कुछ बड़े मजे में चल रहा था। कुछ समय तक तो पांडोबा के दुकान की बिक्री प्रतिदिन ५०) रुपये से ऊपर होती थी। स्टेशनरी, साबुन, धूप-बत्ती, फैन्सी चीजें, काच का सामान, विलायती औषधियां, थोड़ा सा कटलरी (चाकू छुरे आदि) माल, ऐसी अनेक वस्तुओं से पांडोबा की दुकान खचाखच भरी हुई होती थी। उन दिनों तो उसका यूनिवर्सल स्टेशनरी मार्ट सचमुच अपना नाम सार्थक करता था।

परन्तु सब दिन किसी के भी समान नहीं जाते। शराब का नशा चढता है वैसा ही संपत्ति का भी चढ़ता है। और उस समय आगे हमारा क्या होगा यह विचार तक मनुष्य के मनमें नहीं छूने पाता। उसको यह मालुम होता है कि यहां ऐसा ही आनंद चलेगा। पांडोबा की दुकान इतनी जोर शोर से चलती देखकर कितने लोगों के पेट दुखने लगे। शीघ्र ही पांडोबा से चार दुकान के बाद दूसरी एक स्टेशनरी की दुकान खुल गई। पांडोबा की दुकान की बिक्री पर इस बात का असर पड़ा ही। और इस दूसरे दुकान दार ने कितने दिन तक तो जिस मूल्य में पांडोबा बेचता था उसकी अपेक्षा कम कीमत में माल बेचना शुरू कर दिया। गांवों के लगभग सभी ग्राहक इस नये दुकानदार की ओर खिच गये। लड़कों की टोली पांडोबा की दुकान के पास आने लगती तो पांडोबा अत्यन्त आशापूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखता। परन्तु वह टोली सीधी उस दूसरे दुकान-दार के पास चली जाती! उसने उस दुकानदार को समझा कर कहा, "ऐसा करके तुम ग्राहकों को खराब कर रहे हो। समान कीमत में दोनों दुकानों का माल बेचा जाय तो अच्छा!"

पर पांडोबा की शिष्टता निष्फल हुई! उसके प्रतिस्पर्द्धि ने तो मानो पांडोबा की दुकान उठा देने के लिए कमर कस ली थी; पांडोबा के लगभग सभी ग्राहक अपनी ओर मुड़ रहे हैं यह देखकर उसके आनंद की सीमा न रही और पांडोबा अपनी दुकान कब बंद करता है इसकी अत्यन्त आतुरता से राह देखने लगा।

परन्तु उसको मालूम पड़ने लगा कि बात ठीक इसके विपरीत होरही है। पांडोबा जब दुकान में आया करता था तभी आता और जब बंद किया करता था तभी बंद करता। बिक्री घटने से उसको बुरा अवश्य लगा, परन्तु इससे वह भयभीत नहीं हुआ और ऐसी विपत्ति की दशा में उसके साले ने उसकी कल्पनातीत सहायता की। उसने पांडोबा से साफ साफ कह दिया कि बिना किसी हिचकिचाहट के किसी से अब कुछ ऋण अवश्य लेना होगा। लगभग एक साल तक पांडोबा की उसने मुक्त हस्त से सहायता दी।

लागत खर्च से कम मूल्य में उसका प्रतिस्पर्द्धी भला कब तक माल बेच सकता। शीघ्र ही उसको उचित भाव में ही माल बेचना लाजमी होगया। अतएव पुराने ग्राहकों में से कितने धीरे धीरे पांडोबा की ओर झुकने लगे और उसकी मनोवृत्ति उल्लसित होने लगी। भयंकर विपत्ति में सहारा देकर अपनी पति रखने वाले साले को मुँह फट बातें सहना उसको लाजमी हो गया।

अस्वस्थता के कारण उसके साले राजाभाऊ का स्वभाव चिड़ चिड़ा होगया था। पांडोबा के लड़के बच्चों को वह छोटे मोटे कारणों पर भी मार देता था। बाहर घूमने के लिए जाता ना रात के दश दश बजे तक वापस लौटकर न आता। बड़ा खाऊ मनुष्य था! पाँडोबा ने एकबार सहज भाव से उससे कहा कि स्वास्थ्य सुधारना है तो जिह्वा पर भी कुछ नियन्त्रण रखो। इसका उसने उलटा ही अर्थ लगाया! पांडोबा पर वह बहुत

रुष्ट हुआ। जो मनमें आया वही बड़बड़ाने लगा,

"तुम्हें आदमी को पहचानना नहीं आता। मैं कुछ तेरे पास भीख मांगने तो आया नहीं हूँ। यदि तुम यह चाहते हो कि मैं तुम्हारे घर नहीं रहूँ, तो साफ साफ क्यों नहीं कहते। कल ही कल में दूसरी जगह खोज देखूंगा।

उस दिन से उसने कान पकड़े कि गृहस्थ राजाभाऊ चाहे जैसा चले, पर मैं तो उससे कुछभी कहने पुछने का नहीं।

कभी कभी राजाभाऊ स्थानिक "प्रकाश" नामक साप्ताहिक पत्र के कार्यालय में जाकर वहीं अंगुली चटकाते हुए बैठा था। संपादक सोचता था कि यहाँ से यह व्यक्ति कब टले! परन्तु उस में और पांडोबा में अच्छी तरह पटने के कारण वह उसके मुँह पर कुछ कह नहीं सकता था—इतना ही। पिछले दो वर्ष राजाभाऊ मैट्रिक परीक्षा के इतिहास का एक परिक्षक था। यह समाचार कानोकान गांव भर में फैल गया, तब से मैट्रिक का प्रत्येक विद्यार्थी उसकी तरफ जरा सम्मान की दृष्टि से देखने लगा और वहीं के हाईस्कूल की शिक्षक मंडली भी उसको थोड़ी बहुत मानने लगी थी। पिलोबा को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो पान तंबाखू खाते खाते बड़बड़ाया,

"हुआ करे! हमारा क्या! हमें उससे क्या लेना देना।"

राजाभाऊ पांडोबा के पास यद्यपि महीना डेढ महीना रहा तथापि उसने उसको अपने कारण कभी खर्च में नहीं डाला।

इतना ही नहीं, वह पांडोबा के भरे पूरे परिवार को जहां तक उससे हो सकता था इतनी सहायता करता रहता था। एक दिन न जाने उसके मन में क्या आया किसको मालूम। राज भाऊ स्वयं उठा, साठ रुपये का नोट अपने ट्रंक से निकाला, सीधे पांडोबा की दुकान के मकान-मालिक के पास पहुँचा और उसको चार-महिने का पेशगी किराया देकर उसकी रसीद (पावनी) लेकर चला आया। उसका यह काम पांडोबा की दुकान में बैठे ही बैठे एक नौकर से मालुम पड़गया। तब गद्गद कंठ से पांडोबा कहने लगा,

"सनकी का सा काम करता है यह तो! घर में देखो तो आये दिन लड़ता रहता है, समय कुसमय कुछ नहीं देखता। प्रत्यक्ष स्त्री के सामने भी मेरी इज्जत उतारता है! और कर्तव्य देखो तो यह है! क्या कहें स्वभाव का क्या ठीक!"

घर आने पर देखता है तो राजाभाऊ पांडोबा के दोनों लड़कों को पहाड़े न कहने के कारण हाथ की छड़ी से मार रहा था।

जैसा जैसा राजाभाऊ का स्वास्थ्य सुधरने लगा वैसे ही वैसे उसके चिड़चिड़ा पन में कमी आने लगी। वे कुछ शान्त हो गये। उसकी तिरस्कार पूर्ण दृष्टि में भी शनैः शनैः परिवर्तन होने लगा। पांडोबा से अब सरलता से बोलने लगा और उससे उपदेश की बातें कहने लगा। चाहे कुछ भी हो जाय दुकान बंद नहीं करना ऐसा उसने उससे साफ साफ कह दिया। आगे पीछे सहायता देने का भी उसने वचन दिया।

अपने गांव जाने के पहिले पांडोबा के प्रत्येक लड़के लड़कों के हाथ पर मिठाई खाने के लिये कहकर एक एक रुपया रखना वह नहीं भूला।

\+ \+ \+

एप्रिल का दूसरा सप्ताह—

राजाभाऊ इस वर्ष भी मेट्रिक के इतिहास का परीक्षक था और परीक्षकों की पहली बैठक समाप्त कर बांबई से अपने गांव जाते जाते मार्ग में एक दिन पांडोबा के घर उतरा। "युनिवर्सल स्टेशनरी मार्ट" के मालिक की दशा इन दिनों बहुत गिर गई थी, क्या करने से अपनी दुकान फिर पहले की भाँति चलने लगेगी इसका कोई भी मार्ग पांडोबा को सूझ नहीं पड़ रहा था, राजाभाऊ ने जब इसका कारण पूछा तो पांडोबा ने हाइस्कूल पिलोबा के द्वारा खोले हुए स्टोर का सारा समाचार विस्तार से उससे कहदिया, इसपर राजाभाऊ बोला,

"इस समय मैं जल्दी में हूँ। जून के महीने में एकबार मैं इधर आऊँगा, उस समय मैं इस संबंध में चर्चा करूंगा। तब तक धैर्य धरो।"

परीक्षा समाप्त हो गई। और सब प्रश्नपत्रों के संबंध में लड़के बहुत प्रसन्न थे। अपेक्षित प्रश्नों में से बहुत कुछ पूछा गया था। और लड़कों ने उनके रटे हुए उत्तर लिख दिए थे, परन्तु साइंस और इतिहास ये दोनों प्रश्नपत्र कुछ पेचीदे थे। पर साइंस में जिन लोगों ने 'थ्योरी' घोख रखी थी वे तो भी

वाली अर्धाङ्गी की बार बार दिलाई हुई शपथ की कौन समझदार अवहेलना कर सकता है ? पिलोबा पांडोबा के पास गया।

\+ + +

पिलोबा को इतनी धूप में अपनी घर की सीढी पर चढ़ते देख कर पाँडोबा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ! उसे मालूम हुआ कि ये सज्जन और कोई साड़ेसाती अपने ऊपर लाने वाले है। क्या ठिकाना ऐसे लोगों का ! वह घबड़ाई हुई दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। दरी के ऊपर गद्दी का सहारा लेकर वह बैठ गया और फिर हुश्‌-हुश्‌ करने के उपरान्त लौटाभर पानी पिया। सुस्ताने के उपरान्त पिलोबा बोला—

"ओहो ! कैसी भयंकर धूप है !"

पांडोबा ने कहा,

"मैं तो यही विचार कर रहा था कि इतनी गर्मी में आप इधर कैसे निकल पड़े।"

"एक अत्यन्त आवश्यक काम है,"

"क्या बात है ?"

"हमारी बाबी परीक्षा में बैठी है, यह तो तुम्हें मालूम ही होगा ?"

"है तो मालूम"

"वह परसों बंबई से आई,"

"अच्छा"

"और हे महाराज, उसका मुँह अत्यन्त उदास है,"

"तो क्या बात है ? तुम्हारी बाबी तो अत्यन्त होशियार है।"

वाली अर्धाङ्गी की बार बार दिलाई हुई शपथ की कौन समझदा अवहेलना कर सकता है ? पिलोबा पांडोबा के पास गया।

+ + +

पिलोबा को इतनी धूप में अपनी घर की सीढी पर चढ़ते देख कर पांडोबा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ! उसे मालूम हुआ कि ये सज्जन और कोई साढ़ेसाती अपने ऊपर लाने वाले है। क्या ठिकाना ऐसे लोगों का ! वह घबड़ाई हुई दृष्टि से उसकी और देखने लगा। दरी के ऊपर गद्दी का सहारा लेकर वह बैठ गया और फिर हुश्श्-हुश्श् करने के उपरान्त लौटाभर पानी पिया। सुस्ताने के उपरान्त पिलोबा बोला—

"ओहो ! कैसी भयंकर धूप है !"

पांडोबा ने कहा,

"मैं तो यही विचार कर रहा था कि इतनी गर्मी में आप इधर कैसे निकल पड़े।"

"एक अत्यन्त आवश्यक काम है,"

"क्या बात है ?"

'हमारी बाबी परीक्षा में बैठी है, यह तो तुम्हें मालूम ही होगा ?'

"है तो मालूम"

"वह परसों बंबई से आई,"

"अच्छा"

"और हे महाराज, उसका मुँह अत्यन्त उदास है,"

"तो क्या बात है ? तुम्हारी बाबी तो अत्यन्त होशियार है।"

"ओहो पांडोबा, और तो सभी ठीक था ? पर इतिहास के पर्चे में जरा संदेह है। भूगोल के प्रश्न भी केवल पास होने भर के लायक हुए हैं। इसलिए लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखलाई देते,"

"अरेरे बहुत बुरा हुआ !"

"मैं तुम्हारे पास बड़ी आशा से आया हूँ........अभी कुछ दिन पहिले तुम्हारे घर राजाभाऊ आये थे न ?"

"अच्छा तो ?"

"वे हैं इतिहास के परीक्षक। हमारे हाइस्कूल के पर्चे उन्हीं के पास जाना संभव है।"

"अच्छा ! क्या यह एकदम ठीक है !" तब सारी बातें धीरे धीरे पांडोबा के ध्यान में आने लगी। मन ही मन उसे मनुष्य स्वभाव पर हँसी आई। अपनी हानि होवे तो यह देखकर स्वतः ही खटपट करने वाला यह सज्जन आज अपनी ओर से इतनी मिन्नते करने के लिए आया है ! क्षण भर विचार कर उसने तिरस्कार से कहा,

"यह तो भाई मुझ से किसी प्रकार भी नहीं हो सकेगा।"

"पांडोबा, ऐसा मत कहो भाई ! यदि तुम मनमें विचारो तो यह सब कुछ हो जायगा। मेरी इकलौती एक मात्र लड़की है, मेरे ऊपर कुछ कृपा करो ! तुम्हारा उपकार मैं आजन्म नहीं भूलूँगा।"

पांडोबा के विचार बदलने के कुछ लक्षण नहीं दिखलाई दिए! अन्त में याबी का नंबर एक चिट पर लिख कर उसे उसके सामने रखकर पिलोबा रोती सी आवाज में बोला,

"तारो चाहे मारो। सब तुम्हारे हाथ में है।"

याधोबा के जाने के घंटे दो घंटे बाद बाघंणाबाई बाबी को लेकर चिमाताई के पास आई और किसी न किसी तरह से पांडोबा का विचार बदलने का आग्रह किया। हुचकियों और आँसुओं की लड़ी लग गई। चिमाताई पिघल गई और वह पांडोबा के पीछे पड़ गई।

"और आठ दिन के बाद इस पर विचार करके जो होगा सो कह दूँगा", यह अन्तिम उत्तर उसने उसको दिया। अभी तक जो बिल्कुल भी आशा नहीं थी—अब वह थोड़ी सी उत्पन्न हुई। इसी सान्त्वना को लेकर मां-बेटी घर को लौटी।

\+ + +

बहुत विचार करने के उपरान्त पांडोबा ने ऐसा निश्चय किया, राजाभाऊ से इस बारे में कुछ भी चर्चा न की जाय—न उसे कष्ट दिया जाय। पिलोबा के समान दुष्ट इस समय इतनी विनती करने लगा है; परन्तु यही फिर उखटेगा नहीं यही कैसे कहा जाय? उसने "उडाया तो कौवा—डूबा तो मेंढक" इस कहावत के अनुसार चलने का निश्चय किया। बाबी पास हो गई तो अच्छा ही है, यदि पास नहीं हुई तो 'साला विक्षिप्त है' यह कह कर अपना छुटकारा पा जाऊँगा।

फिर जब पिलोबा आया तब उसने पांडोबा से स्पष्ट कह दिया,

"पाठशाले का स्टोर बंद कर दो और अबतक हुए घाटे के ५००) रुपये मुझे भर दो।"

लड़की कहीं जान न दे दे इस आशंका से पिलोबा ने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली, हेड्मास्टर को पिलोबा समझाने दिया कि स्टोर के काम से लड़के प्रसन्न नहीं है, इसलिये उसे बंद ही कर देना अच्छा है। जब पांडोबा से हेड्मास्टर ने यह कहा कि लड़को के प्रसन्न न होने के कारण शाला का स्टोर चल नहीं सकेगा तब उसको निश्चय हुआ और फिर उसने पांडोबा को उपरी मन से यह वचन दिया।

"बाबी के बारे में किसी प्रकार की चिन्ता न करो।"

\+ \+ \+

बाबी पास होगई, इतिहास भूगोल में पास होने के लिए आवश्यक मार्कों से उसको पांच मार्के अधिक ही मिले थे। पिलोबा को मालूम हुआ कि यह पांडोबा की कृपा है। पांडोबा मन में कहता, "मुए को कैसा फाँसा !"।

राजाभाऊ को जब यह सब मालूम हुआ तो उसको विश्वास हो गया कि मैं पांडोबा को जितना मूर्ख समझता हूँ उतना वह नहीं है ! पांडोबा ने अपनी ही दम से मुझे उखाड़ लिया। यह पिलोबा को भी मालूम हो ही गया।

मेरी पहिली वकीली

सन १६०- के गर्मियों के दिनो की बात है। दिवानी कोर्ट की छुट्टी थी। केवल फौजदार काममात्र चलाते थे। मुझे वकीली का सार्टिफिकट मिले अभी कुछ ही दिन हुए थे और मैं कोर्ट में आने जाने लगा था। आज तक तो एक भी मुकदमा मुझे नहीं मिला था। हमारे यहाँ के कई वकीलो की मंडलियाँ हवा खोरी के लिये इधर उधर देहातों में चली गई थी। पर मैं यह सोचकर कहीं घूमने नहीं गया कि शायद दो तीन मजिस्ट्रेटों की अदालतों में कोई छोटा मोटा काम मिल जाय तो कुछ आमदनी हो जाय। इस लिए मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मै प्रतिदिन कोर्ट का चक्कर लगा आया करता था।

ता: २३ बुधवार को मजिस्ट्रेट की अदालत में डाक तांगा लुटने का मुकदमा चलने वाला था। उसमें एक वादी की ओर से था मुझे वकालतनामा मिला था अर्थात् यह मेरा पहला ही मुकदमा था। मेरा पक्षकार आसामी कच्ची कैद में था। मै मंगलवार को प्रात:काल उससे मिलने गया। अपने पक्षकार से मेरी बहुत देर तक बात चीत हुई और इससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस रात को डाक का तांगा लुटा उस रात को मेरा पक्षकार अपने कुछ साथियों के साथ गांव में गया था। उनमें से एक दल के सब मनुष्य थोडो बहुत शराब लिये हुए थे वे अपने गांव में लौट रहे थे।

इधर से जाने वाला डाक का तांगा उस मंडली को रास्ते में मिला। उस मंडली के बहुत से मनुष्य शराब के नशे में मस्त थे। गाड़ी की आवाज दूर से उनके कानों में पड़ी। यह डाक का ही तांगा है यह विचार कर उन्होंने उस पर छापा मारने का इरादा किया। फिर क्या था? तांगे के उनके पास आते ही एक-दो ने उसके घोड़े पकड़ लिए। एक ने तांगे वाले को नीचे उतार लिया और एक ने डाक वाले को पकड़ कर धोती से उन दोनों की मुसकियाँ बाँध दीं और डाक के थैले को लेकर पास के ही खेतों में चले गये। वहाँ थैले खोल कर किसी कोली में से आभूषण, किसी पत्र में से नोट वगैरह निकाल लिए। कुल मिलाकर ५-६ सौ रुपयों का माल उनके हाथ लगा। वह सब लेकर बाकी सब वहीं छोड़कर वे सब भाग गये। मेरे पत्रकार ने मुझसे यह सब हाल कहकर शपथ लेकर इतना और कहा कि,

"मैंने अपने साथियों से वैसा न करने के लिए कहा और उनका मन बदलने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं किया। मैं आखिर तक उनके साथ था सही, परन्तु इस काम के करने में यदि मैंने उनको कुछ भी सहायता की हो अथवा उस लूट के माल में से किसी वस्तु में हाथ भी लगाया हो तो मुझे शपथ है।" इसके बाद मेरे सब साथी वहां से फरार होगये। केवल मैं ही उस तांगे वाले की नजर पड़ गया। इस पर उसके मुझे पहचान लेने पर मैं पकड़ा गया।

तांगा लुटने के दूसरे दिन पोलिस को उस खेत में डाक के

थैले फुटकर झोलियां और बहुत से फटे हुए और, दूसरे पत्र वगैरह सब चीजें पड़ी मिलीं। उनमें के जो पत्र फटे हुए थे उनकी नकल कर और उस घटना का खुलासा हाल लिख कर जो जो जिस जिस पते के थे उनको उसी पते से पुलिस ने भेज दिया और बाकी सब चीजें डाकखाने को सौंपने के लिए भेज दीं। जो असली पत्र पुलिस ने रखे थे वे मुकद्दमे के सबूत के कागजों में शामिल कर दिये गये थे। अतएव वे उसी दिन मुझे देखने को मिले थे।

इस तरह मंगलवार के प्रातःकाल १२ बजे तक उस मुकद्दमे के सब कच्चे विवरण मैंने देख लिए थे और फिर यों ही समय काटने के लिए दूसरे मजिस्ट्रेट की अदालत में चला गया। वहाँ एक दूसरा मुकद्दमा चल रहा था। उसे देखने के लिए बैठ गया। उस मुकद्दमे का विवरण इस प्रकार था—

गाँव में ताराबाई नाम की एक वृद्ध जागीरदारिन रहती थी; उसके सोने के कमरे में उसके संदूक में से १०० के नोट चोरी होगये थे। उस बाई के पास कमला नाम की एक १५-१६ वर्ष की लड़की नौकरी करती थी। उस लड़की के खास संदूक में तलाश करने पर २५ रुपये के नोट मिले थे और वे नोट उन्हीं चोरी गये नोटों में से हैं ऐसा उस वृद्ध बाई ने कहा था। इस पर उस लड़की पर चोरी का आरोप किया गया था। उस लड़की ने हाथ पैर जोड़कर बहुत कहा कि "मैंने आपके नोटों को देखा ही नहीं। किसी दुष्ट ने वे मेरे संदूक में डाल दिये",

परन्तु इतना पुष्ट प्रमाण मिलने से उसके कहने पर भला कौन विश्वास करता। केवल मैं उसकी मुखाकृति को बहुत देर तक एक टक देखता रहा। इस पर उसने अपराध किया होगा ऐसा उसकी मुख मुद्रा को देखकर मुझे विश्वास न हो सका। मुकदमा शुरू होने ही वाला था। इतने में एक २४-२५ वर्ष का नवयुवक जहाँ मै बैठा हुआ था उस कुर्सी के पीछे से आकर मेरे कान में कहने लगा, "रावसाहब, आपकी वकीली खूब अच्छी चलती है ऐसी आपकी कीर्ति है--"

मैंने उसी समय पीछे फिर कर उसकी ओर देखा और कहा, "अच्छी वैसी ! पर हाँ वकीली करता हूँ यह सच है--"

मेरे इस उत्तर की बाट न देखकर वह व्यक्ति रोनी सूरत बनाकर अत्यन्त दीनता दिखाते हुए बोला,

"रावसाहब, इस गरीब के ऊपर दया करके उस लड़की की कुछ मदद करोगे क्या? वह लड़की एकदम निरपराध है। यदि उसे छुड़वादो तो--"

बोलते बोलते बेचारे का कंठ भर आया। मैंने उससे पूछा कि लड़की की तरफ कोई वकील नहीं है क्या?

उसने कहा,

"अजी, आपने भी भली चलाई। उस गरीब बेचारी को भला कौन वकील मिलता। परन्तु यद्यपी आप प्रयत्न करके उसे छुड़ावेंगे तो मैं अपनी चमड़ी के जूते बना कर आपको पहिना-ऊँगा, ईश्वर आपको अत्यन्त यश देगा।"

मैंने क्षणभर विचार किया और उस लड़की की ओर ज़रा अधिक गौर से देखने लगा। वह भी मेरी ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। मानो अपने म्लान चेहरे और अश्रुपूर्ण नेत्रों से ऐसा कहती हो कि "मुझे तुम्हीं बचाओ" ऐसा मुझे मालूम पड़ा। मुझे उसके ऊपर दया आगई और मैंने तुरन्त उसकी ओर से काम करने का निश्चय कर लिया। उसी समय मैं उठ कर उस लड़की के पास गया और "तेरा काम मैं चलाऊँ क्या?" ऐसा कहकर उस से पूछा। उसने सिर हिलाकर सम्मति दी (सिर से ही सम्मती सूचक चिह्न किया)। मैं लौटकर अपनी कुर्सी के पास आया और "आरोपी की ओर से मैं उपस्थित हूँ और आरोपी की और मेरी थोड़ी देर के लिए अकेले मिलने की आज्ञा मिलनी चाहिए," ऐसा मजिस्ट्रेट साहब से निवेदन कर उस लड़की को लेकर ज़रा बगल में चला गया और उससे खुले दिल से वह सब हाल मुझ से कहने के लिए मैंने कहा। तब कमला ने मुझे अपने लिखे हुए हालात बताए।

कमला ने कहा,

"बाई साहब के पास नौकरी में रहते हुए मुझे लगभग दो वर्ष हो गये हैं। इन दो वर्षों में बाई साहब ने मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव किया। वे मुझपर बहुत ममता करती थीं। लगभग आठ दिन पहले बाई साहब के १०० रुपये के नोट चोरी गये। उन्होंने अपने सोने के कमरे में सन्दूक में वे रुपये रखे

थे। बाई साहब ने मुझसे उनके बारे में पूछा। परन्तु मुझे उनके संबंध में कुछ भी खबर न थी—तब भला मैं उनसे क्या कहती ? हमारे घर में सालूबाई जगतापीण नामकी एक रसोईदारिन रहती थी। उसने बाई साहेब से ऐसा कहा कि उसने मुझे बाई साहब के संदूक से नोट निकालते हुए द्वारों की दरार से देखा था; और मेरी संदूक खोलकर देखा गया तो उसमें २५ रुपये के नोट मिले। परन्तु वकील साहब, तुम्हारे चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ, मैंने उन नोटों को छुआ तक नहीं। तुम्हीं मेरे मा बाप हो। कैसे भी हो मुझे इस इलजाम से छुड़ाइये।

इसके बाद कमला का कंठ भर आया और वह आगे कुछ न कह सकी। उसकी सिसकी बंद होने तक मैंने कुछ विचारा और फिर उससे पूछा, "तुझे किसका शक है ?"

कमला बोली, "साहब यह भला मैं कैसे कह सकती हूँ ? परन्तु बाई साहब का मुझ पर प्रेम होने के कारण सालूबाई मुझसे बहुत द्वेश रखती थी। तब उसके सिवाय दूसरा कौन ऐसा करने वाला है ?"

सालूबाई कोर्ट में साक्षी देने के लिए हाजिर हुई थी। उसकी तरफ अँगुली करके "वह देखो साहब सालूबाई" ऐसा कहकर कमला ने मुझे लगभग २५ वर्ष के उम्र की एक काली बदसूरत बाई दिखलाई।

सालूबाई जगतापीण यह नाम सुनते ही मेरे मन में एक अनोखा विचार आया। मैंने उस लड़की से पूछा, "क्या हो इस बाई का नाम ही सालूबाई जगतापीण है ?"

कमला ने कहा, "हाँ साहब!"

"अच्छा, इस नाम की कोई दूसरी भी एकाध बाई इस गाँव में है क्या?"

"नहीं साहब।"

"अच्छा देख, तू कुछ चिन्ता मत कर। मैं अपनी तरफ से प्रयत्न करता हूँ। ईश्वर पर विश्वास रख। वही तुझे इस से छुटकारा करायेगा।"

उस लड़की की आँखें भर आई। मैं भी ज्यादा न कह सका। इस लिए उसको वैसे ही छोड़कर हट गया।

वहाँ से निकल कर मैं ठीक सरकारी वकील के आफिस में गया जहाँ मेरे दूसरे दिन के लूटपाट के मुकदमे के कागज रखे थे और उन कागजों को फिर देखने के लिए मांगा। उनमें से एक कागज ढूँढकर उसे अपने पास लेकर मैं फिर कोर्ट में आया।

इस समय ताराबाई जागीरदारिन का बयान शुरू होगया था। उसने अपनी जिरह में ऐसा कहा कि "मेरा आरोपी पर पूरा विश्वास था और मैं अपने कमरे की चाबी आरोपी को सौंप कर जाती थी। मेरे कमरे में आरोपी के सिवाय दूसरे किसी को भी जाने की आज्ञा न थी।"

इसके बाद संदूक में नोट कैसे रखे थे, और कैसे खोले गये आदि आदि उसने सब विस्तार से वर्णन किया। अन्त में उनमें से २५) के नोट आरोपी के संदूक में कैसे पड़े मिले इस

बारे में भी खुलासा हाल कहा। इसके बाद मैंने उनसे जिरह करना शुरू किया। मैंने पूछा, "तारा बाई, मुझे ऐसा कहो कि पहले किस समय पहले "तुम्हारे नोट चोरी होगये" ऐसा तुम्हें मालूम पड़ा। उस समय इस आरोपी ने ही लिये होंगे ऐसा तुम्हारा शक हुआ था क्या ?

ताराबाई ने कहा, "बिलकुल भी नहीं।"

"अगर साल्ूबाई तुमसे" आरोपी का संदूक देखो जिससे उसमें २५) के नोट पड़े हुए मिलेंगे ऐसा न कहा होता, तो आरोपी का संदूक खोजने का विचार भी क्या तुम्हारे मन में आता ?

"नहीं"

इस के आगे इस बाई के बयान (इजहार) की आवश्यकता नहीं ऐसा कोर्ट को बतलाकर मैंने साल्ूबाई को सामने लाने के लिए (हाजिर होने के लिये) उसके नाम की पुकार करवाई। साल्ूबाई बड़ीशान से धीरे धीरे पैर टेकती हुई साक्षीदार के कटहरे में आकर खड़ी होगई। "अपनी वकीली के शब्दजाल में मुझे कैसे पकड़ते हो यह मैं भी देखलूंगी" मानो वह ऐसा कहती हो, ऐसी अर्थपूर्ण दृष्टि से उसने मेरी ओर तिरस्कार मुद्रा की नजर फेंकी।

अपनी जिरह में उसने कहा कि,

"जिस रात को चोरी हुई, उस रात को मैंने आरोपी को जीना चढ़कर बाई साहब के कमरे की ओर जाते देखा और

होले २ पांव रखने, चोरों की तरह चौंक २ कर देखने और दूसरे २ बर्तावों से मैंने तुरन्त ताड़ लिया कि इस छोकरी के मन में कुछ न कुछ दाल में काला है। और मैं भी धीरे धीरे पैरों की आहट न होने देकर उसके पीछे गई। फिर कमला बाई साहब के कमरे में गई और उसने होले से दरवाजा लगा दिया। मैं द्वारों की दरार से उसे देखती थी। वह संदूक के पास गई और संदूक खोल कर उसमें से पैसे निकालकर उसने उन्हें अपनी चोली में रखा, यह मैंने देखा। इसके बाद उसने नीचे झुककर दिया उठाया और अब वह लौटकर बाहर आने वाली है यह देखकर मैं तुरंत वहाँ से निकलगई।"

इसके बाद साल्लूबाई ने यह बात बाई साहब से कब कही और आरोपी की पेटी खोजने के बारे में उसने बाई साहब को कैसे सुझाया आदि आदि के संबंध में उसने खूब नमक मिर्च लगाकर अत्युक्ति पूर्ण वर्णन कह सुनाया।

साल्लूबाई को जरा कोर्ट के बाहर भेजकर ताराबाई से मुझे दो एक प्रश्न पूछने थे। इस लिए मैंने कोर्ट से वैसी प्रार्थना की। कोर्ट ने साल्लूबाई को बाहर जाने के लिए कहकर ताराबाई को फिर बुलाया। ताराबाई के आते ही मैंने उससे फिर पूछा, "बाई साहब, आपने अभी ही ऐसा कहा था कि आरोपी के सिवाय दूसरा कोई भी तुम्हारे कमरे में नहीं जा सकता—इसका क्या अभिप्राय है? साल्लूबाई के मनमेंसे अगर ऐसा (कमरे में जाने की) आवे तो वह तुम्हारे कमरे में नहीं जा सकती क्या?"

ताराबाई ने कहा, "हाँ, वह जा सकती है। पर इससे क्या हुआ। पहले मैंने जो कहा उसका इतना ही अभिप्राय था कि आरोपी के सिवाय दूसरे किसी को भी उस कमरे में जाने की मेरी तरफ से स्वतंत्रता नहीं थी।"

"तुम पैसे कहाँ रखती हो, यह सालूबाई को खबर होना संभव था क्या ?"

"हाँ, उसे खबर हो भी तो। अनेक बार बाजार से सामान लेने के लिए पैसे मांगने के लिए वह मेरे कमरे में आई हुई है।"

"तुम्हारे पास से चोरी होने के बाद आरोपी ने कभी पैसे खर्च किए हैं क्या ?"

"मैंने देखा नहीं।"—(मुझे नहीं मालुम)

"तुम नौकरों को जब वेतन देती हो तब उसके बदले रसीद भी लेती हो क्या ?"

"हां, सदा।"

"अच्छा कोर्ट की इजाजत मिलने पर तुम सालूबाई के पास से ली हुई रसीद अभी २ जाकर ला सकती हो क्या ?"

"हां जी, मुझे इसमें भला क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"सालूबाई की रसीदें मुझे अभी देखने के लिए चाहिए। इसलिए उन्हें लाने के लिए कोर्ट से इजाजत मिल जाय", ऐसी मैंने कोर्ट से प्रार्थना की। ताराबाई घर जाकर चार पांच रसीदें ले आई और उन्हें मेरे हवाले कर दिया

इसके बाद "ताराबाई का इजहार समाप्त होगया है और मुझे सालूबाई से थोड़े से सवाल करने हैं। इसलिए उसे बुलाया जाय"—ऐसी मैंने कोर्ट से प्रार्थना की। सालूबाई फिर अन्दर आई। इस समय भी वह पहले ही की भांति अत्यन्त ढिठाई से खड़ी होगई। परन्तु अब वह कुछ घबराई हुई थी ऐसा मैं उसके चेहरे पर से ताड़ गया। मैंने पूछा, "सालूबाई, आरोपी ने पेटी से पैसे निकाले यह बात तुमने तुरन्त बाई साहब से क्यों न कहा ?"

सालूबाई ने कहा, "मैं क्यों कर व्यर्थ में दूसरों की चुगली करूँ। मैंने सोचा जो करेगा वह भरेगा। मैं क्यों आज ही छोकरी के पेट पर पैर रखूँ (उसकी रोजी लूँ)।"

"परन्तु क्या बाई, आरोपी को पैसे निकालते हुए तुमने द्वार की दरार से देखा ऐसा तुमने मुझसे पहले कहा था क्या?"

"हां हां, कहा था। बार बार ऐसा पूछ कर मुझे व्यर्थ में डराते क्यों हो ?"

"फिर क्या जी, उस छोकरी ने अन्दर आने से लेकर वापस लौटने तक क्या क्या किया यह सब क्या तुमने साफ २ देखा था ?"

"हां हां, मैं यह सच पहले ही कह चुकी हूँ।"

"तो फिर मुझसे ऐसा कहो कि उस छोकरी ने वह काम करते हुए हाथ का दिया कहां रखा था ?"

"संदूक के पास ही एक अलमारी थी उसके ऊपर—"

"तब पहले जो तुमने मुझ से कहा था कि 'आरोपी ने नीचे झुककर दिया उठाया' यह सच नहीं है क्या ?"

इस समय सालूबाई जरा घबड़ाई और "मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। दिया उठाया सिर्फ इतना ही कहा था—" ऐसा टालमटूल सा उत्तर दिया।

"अच्छा तुम्हें ताराबाई के पास नौकरी करते कितने दिन होगये ?"

"हुए होंगे लगभग ८-१० महीने।"

"बाई साहब तुम्हें तनख्वाह क्या देती थी ?"

"हर महीने सात रुपये।"

"आज तक की सब तनख्वाह तुमको मिल गई है क्या ?"

"नहीं, कुछ मिली है—"

"कितनी ?—पचास रुपये ?"

"यह मैं ठीक ठीक कैसे बता सकती हूँ ?"

"क्यों, ठीक ठीक नहीं बतला सकती हो।"

"जैसे जैसे महीना पूरा होता जाता था वैसे वैसे ही मैं तनख्वाह लेती जाती थी। मैं क्या उसका हिसाब रखती हूँ जो तुमको ठीक ठीक बताऊं ?"

"बाई, इतना अकड़ती क्यों हो ? परन्तु यदि तुम्हारे मन में आरोपी के प्रति कुछ बुराई करने का विचार आया होता तो आरोपी के संदूक में डालने के लिए तुम्हें २५) मिल जाते या नहीं ?"

"वाह जी, यह तुम व्यर्थ की बातें क्यों पूछ रहे हो ?" मेरे मन में उसके संदूक में पैसा डालने का विचार क्यों कर आता ? और मेरे पास इतने पैसे कहां से आए ?"

"तो फिर तुमने नौकरी में रहते हुए आज तक कुछ भी पैसे जमा नहीं किए ?"

"बाई साहब के पास कुछ हिसाब बकाया है उतनी ही मेरी बचत समझो—"

"तो फिर शायद जब तुम बाई साहब के पास नौकरी करने के लिए आई थी उसी समय तुम अपने साथ २५) लाई होगी ?"

"नहीं जी, मेरे पास इतना रुपया कहां से आया ? और क्यों जी वकील साहब, उस छोकरी की पेटी में जो नोट पड़े मिले वे ही बाई साहब के खोये हुए नोटों में से थे यह क्या तुम्हारे ध्यान में नहीं है ?"

सालूबाई की समझ के अनुसार उलटकर मुझे पकड़ने के लिए यही जवाब था।

मैंने उसके उत्तर की ओर ध्यान न देकर फिर उससे पूछा, "बाई तुम कहां की रहने वाली हो ?"

"क्या मैं ? गांव की।"

"वहा आपके कौन कौन हैं ?"

"तुम्हें इस प्रश्न की क्या आवश्यकता है ?"

"यों ही ! कहने में कोई आपत्ति हो तो नहीं पूछूँ ?"

"है, एक बहिन।"

"तो तुम्हारी बहिन का नाम क्या है ?"

इस पर साल्हूबाई बहुत बिगड़ी। "मेरी बहिन के नाम से तुम्हें क्या करना है ?"

"परन्तु नाम बतलाने में क्या कोई हर्ज है ?"

"भीमा बाई"।

थोड़ी देर विचार करने के उपरान्त मैंने फिर पूछा, "साल्हू-बाई, अब सिर्फ एक ही प्रश्न का जवाब दो। तुमने लगभग पांच दिन पहले--गांव में तुम्हारी बहिन को पचहत्तर रुपये भेजे थे। वे कहां से लाई ?"

बस, मेरे इस प्रश्न को सुनते ही उस बाई को मानो बिजली का सा धक्का लगा, उसके सर्वांग से जोर से पसीना छूटने लगा और उसका चेहरा अत्यन्त काला पड़ गया। वह फुर्ती से वहीं नीचे बैठ गई। मैंने कुछ समय बीतने पर फिर उससे वही प्रश्न किया।

"मैं—मैं—साहब—नहीं—" ऐसे ही वह घबराकर नीचे बैठे ही बैठे मुँह ही मुँह (टूटे फूटे शब्दों में) कुछ बोली।

"बाई, सच बोलो, तुमने भेजे हैं," मैंने खासकर कुछ क्रोध का आवेश दिखलाते हुए फिर पूछा।

साल्हूबाई बोली, "मैं नहीं साहब, किस बातका मेरे ऊपर इलजाम लगा रहे हो ?"

मैंने उस बाई से फिर प्रश्न पूछना छोड़ दिया और खड़े

होकर कोर्ट को मुखातिब हो कर कहा, "कोर्ट की इजाजत से मुझे दो शब्द कहने हैं, कल इस कोर्ट में एक आरोपी पर डाक लूटने का आरोप होने के कारण उसकी छानबीन होने के लिये और उस मामले में मैं आरोपी की तर्फ का वकील होने के कारण मैं आज कोर्ट में उस मुकदमे के कागज देखने के लिए आया था। उन कागजों में एक लिफाफा था जिसे फाड़कर उसमें से नोट निकाल लिए गये थे और उसके भीतर का असली पत्र पड़ा मिल गया था। उस मुकदमे में रुपये पैसे आदि जो वस्तुएँ आई हुई हैं और वे पत्र मैंने आज ही सब अच्छी तरह से पढ़े थे। आज के दिन आपके सामने यह मुकदमा शुरु होते ही इस मामले में सालूबाई जगतापीण का नाम की बाई का नाम अनेक बार सुनकर और उस लूटमार के मुकदमे के कागजों में इसी के दस्तखत का एक पत्र देखे को मुझे याद आई। वह पत्र मैं कोर्ट से ले आया। यह है वह पत्र। यह पत्र डाक के लुटे हुए जो पत्र फट गये थे उनमें से है और इस पत्र के साथ पाँचसौ रुपये के नोट थे, ऐसा इसके भीतर के बात पर से साफ जाहिर है। इस पत्र के लिफाफे पर जो डाक की मुहर है, उसे देखते हुए यह पत्र जिस रात को ताराबाई की चोरी हुई ऐसा फर्यादी की तर्फ से कहा गया है, उसके दूसरे दिन डाकखाने में छाप लगी है, यह कोर्ट को आसानी से नजर आ सकती है। कोर्ट की इजाजत मिलने पर मैं उस पत्र को पढ़ कर दिखला दूँगा।" ऐसा कहकर उस को मैंने खोला। उस पर तारीख महीनो आदि कुछ न था। सिर्फ आगे की बाते लिखी हुई थी,

"सीमाताई को साल्र का अनेक पाय लागन । इस लिफाफे में पचहत्तर रुपयों के नोट भेज रही हूँ । उन्हें मेरे घर आने तक अच्छी तरह संभाल कर रखना । मैं अपने पास ही रुपये रख लेती-परन्तु चोरी के भय से रखे नहीं : इस बारे में किसी से भी एक अक्षर भी मत कहना, क्योंकि मेरे पास इतने पैसे हैं यह मुझे औरों पर प्रकट नहीं करना है । यहाँ मैं अच्छी तरह चल रही हूँ ।

आगे मैंने तुझ से जो कहा था कि कमला नाम की छोकरी अभी यहीं है । परन्तु यहाँ से उसे निकाल डालूँ तभी मैं साल्र बाई नाम की होऊँ (जब मैं उसे निकालूँ तब मेरा नाम साल्र-बाई) । सब को मेरा राम राम कहना । आपकी

साल्र्बाई जगनापीरा

इस तरह उस पत्र को पढ़ने के अनंतर वह पत्र और तारा-बाई ने मुझे जो साल्र्बाई की रसीद दी थी वे सब मैंने मजिस्ट्रेट साहब के हवाले कर दिये, "इस पत्र के लिफाफे पर लिखे पत्ते से गाँव में सीमा बाई नामकी बाई को भेजा गया है यह कोर्ट के ध्यान में सहज ही आजायगा । इस पत्र के और रसीदों के अक्षर भी एक ही हैं यह भी कोर्ट की नजरों से नहीं बच सकता । ताराबाई के चोरी गये हुए १००) की क्या वारदात हुई यह भी समझ में आना अब कठिन नहीं । उन सौ रुपयों में से पौनसो रुपये इस पत्र के साथ गांव में जाने वाले थे और बाकी २५) रुपये सच्चा गुनहगार छिपाने के लिए इस निरपराधी छोकरी के संदूक में गये ।

पत्र व रसीद देखने के साथ ही कोर्ट को निश्चय हो गया कि बात क्या है और इस संबंध में ज्यादे छान बीन न कर कमला को दोष मुक्त कर उसे छोड़ दिया गया।

जिस तरुण मनुष्य के प्रार्थना करने पर मैं इस मुकदमे मे पड़ा था वह मेरे कुर्सी पर से उठते ही दौड़ता हुआ आया और मेरे पैरों पर वह एकदम लोट गया। वह एक भी शब्द न बोल पाया—इतना उस समय उसका कंठ भर आया था। मैं कहां हूँ यह भी वह भूल गया और कमला के कठघरे से बाहर होते ही वह एकदम दौड़कर उसके पास गया और उसे गले लगा लिया। वह छोकरी भी उसकी छाती पर सिर रखकर बहुत फूट फूट कर रोई।

साल्हबाई की इसके बाद क्या दशा हुई यह कहने की आवश्यकता नहीं। थोड़े ही दिनों में वह तरुण मनुष्य मेरे पास फिर आया और मैंने उस पर जो उपकार किया था उसके चिन्ह स्वरूप उसने मुझसे लगभग १००) की कीमत की एक अँगूठी लेने का बहुत आग्रह किया। लाइलाज होकर मुझे अँगूठी लेनी पड़ी। फिर बातचीत के सिलसिले में उसने मुझे यह सूचित किया कि उसकी और कमला की शादी शीघ्र होने वाली है। इसलिए "यह अँगूठी मेरी ओर से तुम अपनी बहू को दहेज में देना" यह कहकर मैंने वह अँगूठी फिर उसके हवाले करदी।

झूठी-प्रेम कथा

डाक्टर रमानाथ की डाक आने का समय और उनके काम का समय दोनों एक ही थे। इसलिए उनका रोज का क्रम ऐसा था कि नौकर डाक लाकर मेज पर रख देता था और रमानाथ पत्र किस किस के हैं—कहाँ से आए हैं सरसरी निगाह से इतना ही भर देख लेते थे और फिर जब दो तीन घंटे बाद काम से छुटकारा मिलने पर कुछ अवकाश मिलता तब उनको फाड़ कर पढ़ते थे। कभी कभी तो उनको इस नियम का पालन करना कठिन हो जाता था। डाक में एकाध पत्र ऐसे व्यक्तियों के आए होते कि उन्हें तत्काल ही खोल कर पढ़ने को उनको अत्युत्कट इच्छा होती। परन्तु इस इच्छा के वे वशीभूत न हो जाते। ऐन काम के वक्त डाक्टर का मन अपने निज के सुख दुःख से यथा-शक्ति निर्लिप्त होना चाहिए—इसी विचार से कदाचित वह अपनी इच्छा दबाते हों—यह कौन कह सकता है? परन्तु यह सच है कि तुरन्त पढ़ने योग्य मालुम होने वाले पत्रों तक को वे बिना खोले ही रख देते थे।

अगर ऐसा न होता तो आज की डाक में वह जामनी रंग का लिफाफा उन्होंने अवश्य उसी समय फाड़ लिया होता। उसके सुन्दर रंग से, बम्बई की मुहर से और पत्ते पर के अक्षरों से डा० रमानाथ को यह तुरन्त मालूम होगया था कि यह पत्र गुलाबराव का है उस पत्र को देखते ही उसने मनमें कहा

"आखिर इन महाशय को हमारी याद आई तो सही। मैं सम-मता था नये जमाने की सुन्दर बहू पाने के साथ ही ये महाशय सांसारिक आनन्द में ऐसे मग्न होगये कि सब मित्रों को एकदम भुला दिया। .... "

लगभग एक महीने में भेजे हुए इस पत्र में गुलाबराव ने अपने विवाहित जीवन के सुखों का क्रमशः वर्णन किया होगा इसमें डाक्टर को रत्ती भर भी संदेह नहीं था। वैसे ही गुलाब राव पहले दर्जे का हँसोड़, और उस पर केतकी सी सुन्दर बहू मिल गई। इसलिए प्रियतमा को प्रसन्न करने का विवाह सुख का नशा उस पर चढ़ा हो तो क्या आश्चर्य ? उसके पत्र में इसी प्रकार की करोड़ों अभिमान की बातें लिखी हुई होंगी। केतकी के साथ किए हुए हास्य-विनोद की एकान्त में की हुई बातों तक को वह खुश दिल लिखकर कहता था। एक महीने पूर्व आए हुए पत्र में गुलाबराव ने लिखा था—

"केतकी को चिढ़ाने में मुझे बड़ा आनन्द आता है। क्योंकि वह चिढ़ने पर और भी सुन्दर दिखलाई देती है। परसों एक दिन उसका चुम्बन लेने में मुझे इतना भी ध्यान भूल गया कि उसको मालूम हुआ होगा कि अब मेरे होठ कभी मुक्त होने वाले नहीं हैं। इसलिए झूठे क्रोध से दूर ढकेलते हुए से उसने कहा,

'यह क्या ? क्या मेरा मुँह एकदम बन्द कर देने का इरादा है ?'

मैंने कहा,

'सच पूछो तो करना ही चाहिए। क्योंकि तुम्हारे मुख में मादक मद्य भरा हुआ है और मद्य के बोतल को कभी खुला नहीं रखते। इसलिए उसे बंद ....'

पर मेरे आगे के शब्द मेरे मुख में ही रह गये क्योंकि केतकी ने मुझे एक चपत लगाई और मेरा मुँह अपने होठों से बंद कर दिया ...."

ऐसी ही बातें गुलाबराव के आज के पत्र में भी होंगी ऐसा डाक्टर को मालूम पड़ा और बाकी डाक जरा दूर रखकर केवल इस जामनी रंग के लिफाफे को फाड़ूँ ऐसी उनके मनमें उत्कट इच्छा हुई। पर रोज का नियम तोड़ना अच्छा नहीं ऐसा उन्होंने विचार किया और उस लिफाफे को भी बाकी डाक के साथ रखकर अपने काम में लग गये।

उन्होंने ऐसा किया तो सही परन्तु गुलाबराव सम्बन्धी सब विचारों को अपने मन से निकालने में वे समर्थ न हो सके— और विचार एक के बाद एक आते रहे। एक तरफ रोगियों की परीक्षा करते करते औषधियों के नाम और प्रमाण कागज पर लिखते लिखते, रोगी के साथ आए हुए मनुष्य से रोगी के पथ्य परहेज की बातें करते करते, उसका मन बार बार गुलाबराव के सम्बन्ध में विचार करने लगा।

तीस साल निकल गये परन्तु गुलाबराव ने विवाह नहीं किया। एक बड़ी बीमा कम्पनी में बड़े ओहदे पर होने पर भी उस जैसे युवक का अविवाहित रहना लोगों को कुछ आश्चर्यजनक

मालूम पड़ता था। परन्तु ज्योंही कोई इस सम्बन्ध में कुछ बोल-ने को होता त्योंही गुलाबराव किसी विचित्र उपाय से बातचीत का विषय ही बदल देता। डा० रमानाथ बहुत छुटपन से ही उसके स्नेही बन्धु थे। उनको ऐसा ऊटपटांग उत्तर देकर वह बच नहीं सकता था; इसलिये केवल उनसे ही गुलाबराव ने अपने मन का सच्चा कारण एक दिन कह दिया था। उसने कहा था,

"देखो डाक्टर! दस लड़कियां देखकर एक पसन्द करना और उसे अपनी स्त्री कह कर खिलाने के लिये अपने घर में लाना यह विचार तो मुझे कुछ जंचता नहीं है। किसी स्त्री से विवाह कर उससे प्रेम करना और पहले किसी से प्रेम कर उससे विवाह करना इन दोनों में बहुत अन्तर है। कोई वस्तु पसन्द आई और उसे प्रयत्न करके पाया—तब उस पर प्यार होता है। पत्नी भी ऐसी ही पसन्द आने पर प्राप्त की हुई होनी चाहिये। कोरी नवाबी करने और पराक्रम करके एकाध देश पर कब्जा करने इन दोनों में दूसरा ही मुझे विशेष पसन्द आता है। इसी प्रकार प्रियाराधन (?) में भी लड़ाई की आवश्यकता है। एक दूसरे को जीतने के लिए दोनों अंतःकरणों में युद्ध होना चाहिये और इससे जिस संसार का निर्माण होगा वह सच्चा संसार होगा। नहीं तो संसार कैसा। मद्रासी सार (रस) की तरह वह उसमें कुछ तत्व नहीं होता। तश्तरी में डालने पर तो वह छोड़ा नहीं जाता (परोसी थाली छोड़ी नहीं जाती) और मुँह में डालें तो आँखों से पानी आए बिना नहीं रहता। मैं तो सचमुच ही प्रेम

जमे बिना विवाह करने का नहीं। यह योग यदि भाग्य में नहीं बदा होगा तो मैं तो आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। और इसके अतिरिक्त मेरा अपना यह भी विश्वास है कि ऐसी कोई न कोई लड़की कहीं न कहीं मेरी वाट देखती होगी जिससे मेरा प्रेम जमेगा। जल्दी हो चाहे देर में—उससे मेरा मिलन होगा इसमें कोई संदेह नहीं।

तारीफ तो यह है कि गुलाबराव ने यह भविष्य वाणी आधी तो विनोद के लिए की थी, परन्तु आज से तीन चार महीने पहिले अकस्मात यह सच्ची होगई। कंपनी के काम के लिये वह जब सूरत जाते तो वहीं के एजंट धीरजलाल शहा के घर ही उतरते। वहाँ उसकी लड़की केनकी से उसकी मित्रता होगई। उसका वहाँ का मुकाम चार दिन के बदले चार हफ्ते का होगया। मैत्री के जाल में से प्रीति का पक्षी बाहर निकला। और गुलाबराव वापस लौटकर बंबई आया तो कंपनी का २०-२५ हजार रु. काम करके—और 'लाखों में एक काम' वह करके लाया जिसका बखान किया जा सकता है—वह काम था गुर्जर-सुंदरी को पत्नि कहकर लाना! आने के साथही उसने डा० रमानाथ को जो पत्र भेजा उसमें लिखा था—"मेरे संबंध में तुझे जो चिन्ता थी उसे मैंने दूर कर दिया है। मैं सूरत से बहू लेकर आगया हूँ। सूरत की लड़की अत्यन्त सुन्दर है-क्या यह भी अलग (स्पष्ट) कहना होगा ?" डाक्टर ने उस पत्र का जवाब लिखकर उसका अभिनन्दन किया था (बधाई

दी थी) और उसने कहा था—"पराक्रम करके वहू मिलनी चाहिये ऐसा जो तुमने कहा था वह तुमने अक्षरशः सच कर दिखाया! पहले शिवाजी ने सूरत में अंग्रेजों का खजाना लूटा था; और अब तू धीरजलाल का कन्याधन लूट लाया! शाबास! तेरा संसार सुख अपनी आँखों से देखने के लिए कब तेरे पास आऊँ ऐसा मुझे हो रहा है!" इतना ही लिखकर वह रुक नहीं गये थे। दो दिन का अवकाश निकाल कर वे सचमुच ही गुलाबराव के पास रहने के लिए गये थे और उसका और केतकी का आश्चर्यमय एवं सुखमय संसार देखकर अत्यन्त खुश होकर वापस आये थे·········

एक तरफ अपना काम करते करते वह सारी (बातें। गोष्ठी डा० रमानाथ के मनमें आ रही थी और साथ ही साथ महीने भर चुप रहने के बाद गुलाबराव ने आज के पत्र में अपने गुलाबी संसार-सुख के किन किन नवीन समाचारों को लिखा होगा और क्या क्या कमी बेशी दंगे किए (व्यर्थ की खुराफातें-शरारतें की) होंगे—इस संबंध में जितनी कल्पना वे कर सकते थे अपने मनमें कर रहे थे।

आखिर काम से छुटकारा मिलते ही उन्होंने अत्यन्त उत्कंठा से गुलाबराव के उस जामनी पत्र को खोला। ऐसा मालूम होता था कि पत्र खूब बड़ा होगा, परन्तु पत्र खोलते ही उसमें से एक ही मोटा कागज निकला और उस कागज पर अत्यन्त संक्षेप में लिखा था—

प्रिय डाक्टर,

तू फौरन यहाँ आ सके तो अत्युत्तम हो, मेरे संसार को भयंकर दुःख का रोग लगना चाहता है। उस रोग का निदान मुझ से किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। तुम मेरे दिली दोस्त हो—तुम को मैं अपना ही प्राण समझता हूँ। और डाक्टर-मुझे ऐसा मालूम होता है कि यहाँ आने पर तुम उस रोग को समझ सकोगे। उस दुःख के सब लक्षण मैं सविस्तार तुमसे कहूँगा। दो दिन के लिए तो यहाँ आ जा। नहीं न करना, इससे मुझे अत्यन्त निराशा होगी। मेरे मीठे संसार का सारा काव्य नष्ट हो रहा है। इससे मैं चिन्तित हूँ।

यह संक्षिप्त और अनपेक्षित समाचार पढ़कर डा० रमानाथ को बहुत दुःख हुआ। गुलाबराव के पास जाना उनका कर्तव्य था और अगर हो सकता तो गये भी होते। परन्तु इस समय दो महत्वपूर्ण रोगी उनके हाथ में थे। उनको छोड़कर बंबई जावे तो बहुत ही भयंकर हालत में हुए रोगी की ओर ध्यान नहीं दिया जा सकता, और अपने काम में लेशमात्र भी परवाही न होने देना यह उनका व्रत था जिससे वे कभी चूकना नहीं चाहते थे। क्या करें उन्हें कुछ सूझा नहीं। आखिर बहुत सोच विचार कर इन्होंने गुलाबराव को पत्र लिखा कि मैं ऐसी ऐसी अड़चनों में पड़ गया हूँ। अवकाश मिलते ही आऊँगा। परन्तु तब तक अपने संकटों का सविस्तार समाचार मुझे लिख सको तो अच्छा हो, क्योंकि तुम्हारे इस छोटे से पत्र ने मेरे मन में विलक्षण चिन्ता उत्पन्न कर दी है।

गुलाबराव के पास से उत्तर आने में विलंब नहीं लगा। उसने लिखा—

"तू आया होता तो बहुत ही अच्छा होता। पर तुम लिखते हो कि अपरिहार्य अड़चनों के कारण मैं नहीं आ सकता यह मुझे भी ठीक मालूम होता है। फिर आवश्यकता होते ही तुमने यहाँ आने का वचन दिया है। तू अपने वचन को पालेगा इसका मुझे पूरा विश्वास है। इसलिए मुझे कुछ धैर्य हुआ है और मेरे आजकल के संकटों की तुझे थोड़ी बहुत कल्पना हो जाय इसलिए यह सविस्तार लिखकर भेजता हूँ।

"शांत समुद्र की नीली सतह पर विहार करते हुए क्रीड़ा नौका को एकाएक हलचल करने वाले धक्के लगते हैं और तूफानी हवा के आसार नजर आते हैं। ठीक ऐसा ही हाल हुआ है। मैं बहुत घबड़ा गया हूँ। प्रीति की जो बहुमूल्य वस्तु मुझे मिली है वह मेरी अंगुली से निकलना चाहती है क्या, ऐसा भय मुझे मालूम पड़ता है। नाव में पानी आता हुआ तो दिखलाई दे रहा है-परन्तु छिद्र कहां हुआ है—तलेमें या अंगमें-इसका कुछ अन्दाज न होने के कारण नाविक की जो दशा हो जाती है ठीक वैसी ही अवस्था मेरी हो रही है। मेरा सांसारिक आनन्द मुझे नष्ट होता हुआ दिखलाई दे रहा है। परन्तु उसका कारण मुझे मालूम नहीं हो रहा है। मेरी प्यारी केतकी न जाने किस भयंकर चिन्ता में मन ही मन घुल रही है—और कितने ही प्यार से पूछने पर भी अपना हृद्रोग मुझसे नहीं कहती। उसके

मनमें ऐसी कौनसी कथा जड़ पकड़ गई है जिसकी मुझे कल्पना तक नहीं हो सकती ! उससे प्रश्न करूँ तो वह हँसने लगती है और कहती है, 'कहाँ, कुछ तो नहीं, मैं आनन्द में हूँ।' परन्तु उसका वह हँसना कृत्रिम है यह मुझे स्पष्ट प्रतीत होता है और वह सचमुच आनन्द में नहीं है यह मुझे हजार बातों से साफ दिखलाई देता है। उसकी निरन्तर हँसने खेलने की प्रकृति न जाने कहाँ लोप होगई है, घूमने फिरने की इच्छा अस्त होगई है। चूल्हे के पास रसोई करते हुए भी वह पहले गान की तान लेती थी—पर आज डेढ़ दो महीने से उसने दिलरुबा को छुआ भी नहीं। एकाध पुस्तक पढ़कर उसे सुनाता हूँ तो वह शून्य दृष्टि से कहीं देखती रहती है। और पहले प्रातःकाल होते ही जिसकी हँसी मजाक की बातचीत बंद ही नहीं होती थी वह मेरी केतकी शय्या पर मेरे पास ही गूँगी की तरह पड़ी रहती है।

मैंने अनेक प्रकार के तर्क वितर्क कर केतकी के इस विचित्र मनः—स्थिति का कारण जानने का प्रयास किया। मेरे प्रति उसके प्रेम में कमी आगई है यह ऐसी भयंकर कल्पना भी करके मैंने देख लिया—परन्तु मेरी वह कल्पना कुछ जमती नहीं और ऐसा सोच कर मैं केतकी के प्रति अन्याय करता हूँ इस बात का मुझे निश्चय है। केवल एक ही विचार मेरे मन में आता है। वह यह कि उसके मनमें किसी प्रकार की भयंकर दहसत (त्रास) और भीति बैठ गई है। वह कुछ घबड़ाई हुई दृष्टि से इधर उधर देखती हुई सी प्रतीत होती है मानो उसको ऐसा संशय निरंतर

लगा रहता है कि न जाने कोई कब अचानक आकर उससे बात करे। उसकी मुद्रा ही कुछ घबड़ाई हुई सी दीखती है और नींद में भी एकान्त बार दहसत खाई हुई सी के समान वह शंकित हो जाती है। एक दिन इसी प्रकार डर कर जाग कर मुझे पास बैठा देखकर उसने मुझ से पूछा, "तुमको वह मिला था क्या?" परन्तु ऐसा पूछती हुई वह अर्धनिद्रा और भ्रम में होगी। क्यों कि "किसके बारे में तुम पूछ रही हो ?—किससे मिलने की बात पूछती हो ?" ऐसा प्रश्न करते ही वह एकदम अच्छी तरह जाग उठी और फिर इस संबंध में एक अक्षर भी नहीं बोली। इतना ही नहीं, किन्तु मैंने ऐसा प्रश्न किया नहीं कि वह ऐसा कहने लगी, और उस रात्रि से आजतक मैंने जितनी बार उससे उस प्रश्न के बारे में पूछा उतनी बार ही उसने एक ही उत्तर दिया-वह यह कि "छिः, मैंने तुमसे ऐसा कभी पूछा ही नहीं", मानो असावधानी से अपने मुख से उस प्रश्न का उच्चारण होना ही उससे भारी भूल होगई ऐसा उसे मालूम पड़ा और अब जान बूझकर झूठ बोलकर मुझे भ्रम में डालकर ही क्या अपने अर्ध-स्फुट रहस्य को गुप्त ही रखना चाहिए ऐसा उसने निश्चय किया है।

"उसका रहस्य क्या है देव जाने वह कैसे भी स्वरूप में क्यों न हो परन्तु केतकी के प्रति मेरे असीम प्रेम में लेश भर भी कमी होना शक्य नहीं। परन्तु यह उसको मैं किस प्रकार समझा कर कहूँ। वह अपने रहस्य के सम्बन्ध में मुझ से एक अक्षर भी बोलने को तैयार नहीं। इसके सिवा मुझे निश्चय है

कि उसके पतिव्रत में बाधा डालने वाला उसका कोई भी रहस्य नहीं है। वह किसी से बहुत भयभीत है और उस भय का कारण अपनी मूर्खता के कारण मुझ से छिपाए हुए है''......

"अपने विश्वास के अनुसार मैंने ऊपर सच सच लिख दिया है। परन्तु डाक्टर, सच पूछो तो मुझे किसी भी निश्चय पर विश्वास नहीं होता। केतकी को क्या हुआ है और उसका सारा आनन्द एकाएक कहाँ अस्त होगया है इसका विचार करने लगता हूँ तो मुझे कुछ सूझता ही नहीं—कुछ जमता ही नहीं। एक ही बात स्पष्ट है—वह यह कि यदि शीघ्र कोई उपाय नहीं किया गया तो मेरा संसार सुख सदा के लिए नष्ट हो जायगा। मेरे और केतकी के अनुपम प्रेम के समान प्रेम किसी के हिस्से में कदाचित् ही कहीं आया होगा इस अभिमान के और आनंद के नशे में मैं बादलों के पांवड़ों के ऊपर चलता था और अब मेरे समान दुःखी मैं ही हूँ ऐसा रोते हुए पृथ्वी पर शरीर डालने का (मरने का) समय मुझ पर आने वाला है। क्या करूँ मुझे कुछ नहीं सूझता? यह सब वृतान्त पढ़कर जो तुझे उचित जान पड़े कर। जितनी जल्दी हो सके इधर आ, और मुझे इस संकट से बाहर निकालने का ऐसा कोई भी उपाय बतला। मुझे तेरा ही एक बहुत बड़ा आसरा है। तेरे पत्र की और संभव हो तो तेरे आने की भी मैं अत्यन्त उत्सुकता से राह देख रहा हूँ।"

यह पत्र पढ़कर और गुलाबराव के पास जाने को बहुत दिन का विलंब करने का मन पक्का करना डा० रमानाथ के लिए शक्य

न था। उनकी देखरेख में आए हुए दो रोगियों का स्वास्थ्य भी अब विशेष चिन्ता (देख भाल) करने योग्य न था। काम की आवश्यक वस्तुओं को बाँध बूँध कर उसने बम्बई की गाड़ी पकड़ी। गाड़ी में बैठते ही केतकी की मनःस्थिति का कारण खोज निकाल कर और गुलाबराव को मैं किस प्रकार सहायता दे सकता हूँ और उसके आजकल के विचित्र संकट का निवारण मैं कैसे करूँ इन्हीं सब बातों पर वे विचार करने लगे पर उन्हें कुछ सूझा नहीं।

इतना ही नहीं गुलाबराव के पास जाकर पहला दिन उसके घर में बिताने पर भी वह उसकी कल्पना न कर सके। गुलाब राव ने पत्र में जो वृतान्त लिखा था उसी को विस्तार करके उसने डा० रमानाथ से अपनी परिस्थिति का वर्णन कर दिया। डाक्टर ने उसे धैर्य दिलाया सही पर इससे अधिक कुछ हुआ नहीं। अपना परम स्नेही मित्र अब अपने निकट है और वह अपने को कोई मार्ग जरूर दिखावेगा इस कल्पना से गुलाबराव के चित्त को उस दिन कुछ नवीन संतोष लाभ हुआ बस इतना ही। दांपत्य के संसार सुख पर आकर दिखाई देने वाले असंतोष और दुःख के बादल निवारण करने वाले मित्र की भूमिका (Part) मैं किस प्रकार अच्छी तरह निभा सकूँगा यह डा० रमानाथ नहीं समझ पाये। गुलाबराव के घर में रहने के पहले दिन की रात्रि उसने बिस्तर पर लेटे लेटे अत्यन्त अनिश्चित एवं चिन्ताग्रस्त मन से बिताई।

दूसरे दिन प्रातःकाल चाय पीने के उपरान्त गुलाबराव स्नानगृह में गया और विशेष मेहमान के लिए भोजन का आयोजन भी विशेष होना चाहिए इसलिए केतकी भी रसोई के कमरे में व्यस्त थी और डाक्टर बंगले के बरांडे में एक आराम कुर्सी पर समाचार पत्र पढ़ते हुए बैठे थे।

पोस्टमैन आया और उसने डा० के हाथ में डाक का पुलिंदा दिया। पुलिंदे को ज्यों का त्यों दूसरी तरफ के मेज पर रखने के लिए वह कुर्सी से आधा उठा। परन्तु पुलिंदे के ऊपर के ही पत्र का पता पढ़ते ही उसका विचार बदल गया।

वह पत्र केतकी के नाम का था।

उसके नाम के और भी एकाध पत्र हैं क्या उसने देखा,

नहीं थे।

वह एक ही पत्र उसने झट से अपनी जेब में डाल दिया और बाकी डाक मेज पर रखकर वह उठा।

इतने में केतकी तौलिए से हाथ पोंछकर बाहर आई और डाक्टर की ओर देखकर उसने पूछा,

"पोस्टमैन आकर गया क्या ?"

"हाँ"

"पत्र कहाँ हैं ?"

"वे, उस मेज पर"

"मेरा कोई पत्र है ?"

डाक्टर ने हँसकर कहा,

"मुझे क्या खबर ? देख लो।"

केतकी मेज की तरफ बढ़ी।

डाक्टर ने यह दिखलाया कि वह बैठक की ओर जा रहा है; परन्तु केतकी क्या करती है यह जहाँ से दिखाई दे ऐसी जगह छिप कर खड़े रहे।

केतकी मेज के पास गई। जल्दी जल्दी उसने सारे पत्र देख डाले। इधर उधर दृष्टि डालकर मुझे कोई देखता नहीं ऐसा निश्चय होने पर फिर सारे पत्रों पर उसने नजर दौड़ाई। मेरा कोई पत्र नहीं ऐसा देखने पर टेबल के पास से दूर होते ही उसने एक गहरी निश्वास ली। वह निश्वास संतोष की थी अथवा निराशा की यह कहना कठिन है। जो पत्र उसने खोजे उनको आना चाहिए था या नहीं आना चाहिए था यह किसे मालूम। उसकी मुद्रा से आनन्द प्रकट होता था या खिन्नता यह जल्दी से कहना कठिन था।

परन्तु जो बात केतकी की मुद्रा से नहीं मालूम हुई वह उसके आये हुए पत्र में अवश्य ही मालूम होने योग्य थी। डा० रमानाथ ने अपने कमरे में जाकर वह पत्र जेब से बाहर निकाला। क्षण भर उनका हाथ हिचकिचाया। फाड़कर पढ़ना चाहिए क्या यह पत्र? यह बाहर २ विश्वासघात नहीं है क्या? यह पाप...

तथापि रमानाथ ने विचार किया कि अंतिम परिणाम की ओर दृष्टि डालें तो यह पाप नहीं सामान्य परिस्थिति में और सामान्य दृष्टि में जो बातें पाप ठहरती हैं ऐसी बातें डाक्टर को करनी ही पड़ती है, केतकी के निजी पत्र देखने को मिले तो वह

किस विवेचना में है यह मालूम होगा ऐसे विचार डाक्टर के सिर में कितनी वार आए थे। "उसके पास आने वाले पत्र चुराकर बांचने का प्रयत्न तूने क्यों नहीं किया ?" ऐसा गुलाबराव से पूछने की उसके मन में दसिओं वार आई। परन्तु हर बार यह प्रश्न उसके होठों के इधर ही आकर रह गया था। विलक्षण काव्यमय प्रीति की कल्पना से प्रेरित हुए उस युवक को यह बात भला कहाँ रुचती। छुटकारे का उपाय कहने पर भी यह बात सहज में उसकी समझ में आनेवाली न थी और वह किसी तरह भी इस बात पर राजी न होगा। रोग की चिकित्सा करते हुए अनेक बार सामान्य विधि निषेध की तरफ से एक दम उपेक्षा करनी पड़ती है। और केतकी का पत्र चुराकर पढ़ने पर तो इसमें अक्षम्य अपराध समझने लायक कोई बात नहीं इस बात पर रमानाथ को कुछ भी संशय न था। परन्तु यह मालूम होने का लाभ भी क्या होता ? केतकी के पत्र उसे पढ़ने को मिलते कैसे ? जहाँ गुलाबराव का इस योजना के अनुकूल होना अशक्य था वहाँ वह पत्र उसके हाथ आ कैसे पाते ?......

परन्तु ऐसी निराशा में पड़े हुए डाक्टर के हाथ में केतकी का वह पत्र आगया था मानो देव उसे मदद करने लगा हो। उसको फाड़कर बांचने मे मेरे हाथ से किसी प्रकार का अपकार होने की संभावना नहीं ऐसा निश्चय समझ उसकी थी।

परन्तु आश्चर्य तो यह कि पत्र फाड़ने के उद्देश्य से सामने रखते ही डाक्टर का मन किंचित हिचकिचाए बिना नहीं रहा। "यह उचित है ना ?" ऐसा प्रश्न उसके विवेक ने किया ही।

संस्कार की शृंखला को तोड़ते हुए मनुष्य को चाहे कितनी ही धृष्टता क्यों न आगई हो परन्तु उसके टूटते हुए होने वाली आवाज से मनुष्य थोड़ा बहुत चोंके बिना नहीं रहता।

परन्तु डाक्टर का हाथ क्षणभर ही चोंका। मन में की शंका क्षणभर ही टिकी। दूसरे ही क्षण उसने पत्र खोलकर बांचना प्रारंभ कर दिया—

"केतकी, आजतक चार पत्र तुझे भेज चुका हूँ; परन्तु तेरे पास से मनोआर्डर नहीं आया न कोई उत्तर ही आया। मेरे भतीजे रमणलाल को जब तू कौलेज में थी तब तूने चार पाँच पत्र भेजे थे। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका सारा सामान बांधते हुए वे पत्र मेरे हाथ लगे हैं—यह मैं फिर तुम्हें लिख देता हूँ। वह पत्र तुम्हारे पति को मैं दिखाऊँ तो वह अवश्य तुझे घर से बाहर निकाल देगा! अगर ऐसा होना न चाहो तो दो सो रुपये मुझे तुरन्त भेज दो। एक महीना मैं बाट देख चुका हूँ। अब देखने वाला नहीं यह निश्चय समझो। आज से दस दिन में यदि तेरा मनिआर्डर नहीं आया तो मैं स्वतः बंबई आऊँगा। तुम्हारी आबरु मेरे हाथ में है—इसका अच्छी तरह विचार कर ले और रुपये तुरन्त भेजदे।" मनसुख मेहता।

डाक्टर ने वह पत्र एक बार फिर पढ़ा और उसपर विचार करते हुए बैठ गया। केतकी के भय और चिन्ता का कारण अब उसकी समझ में आगया था। उसके निवारण करने का उपाय खोजकर निकालना था। उसकी मित्रता के कार्य का आधा भाग।

तो सहसा साध्य होगया था। आधा अवशेष था। और वह अवशिष्ट कार्य जितने ही महत्व का था उतनाही कठिन और नाज्जुक था। अपने जीवन की एक प्रेम घटना अपने पति को मालुम हुई तो उसकी निष्ठा और प्रीति सदा के लिए गँवा बैठूँगी इस भय से केतकी को मुक्त कराना था।... .....

वे लगभग एक घंटे बाद कमरे से बाहर आये। गुलाबराव को क्या सलाह देनी है इस सम्बन्ध में उनके मनमें निश्चय होगया था और वह कब मिलेगा ऐसी उत्कंठा उनके मनमें थी।

परन्तु उसने खोज खबर की तो उसको जान पड़ा कि गुलाब-राव बीमा कंपनी के आफिस में गया है।

ठीक दोपहर के भोजन के बाद उससे शांति पूर्वक यह सब बातें कहनी होगी डाक्टर साहब ने अपने मनमें ऐसा विचार किया।

पर लगभग दोपहर के भोजन के समय ही गुलाबराव का टेलीफोन आया,

"हलो, कौन ? डाक्टर है क्या ? हाँ ठीक तुम से ही बात करनी है मुझे। यह देख—तू मुझ पर क्रोध मत करना। मैं अभी भोजन के लिये नहीं आ सकूँगा। कम्पनी के दो बड़े डायरेक्टर कलकत्ते से आकर प्रविष्ट हुए हैं (अभी २ आए हैं) और उनके साथ २ यहाँ के सभी डायरेक्टरों के घरों में मुझे घूमना होगा। इसी तरह भटकते हुए मेरा सारा दिन निकल

जायगा। रात के भोजन तक घर निश्चय आ जाऊंगा। हमारा काम ही ऐसा है—देख, अवारे की तरह भटकना और थककर घर आना। तू और केतकी अब आनंद से भोजन कर लो। रात को हम सिनेमा चलें तो कैसा हो?—हाँ? क्या?—क्या कहते हो?—मुझ से तुम्हें बहुत बातें करनी है? अच्छा, बोलेंगे बैठकर! अच्छा, अच्छा! हाँ अवश्य। केतकी क्या करती है?—हाँ क्या?...ठीक; मैं फिर कहता हूँ मैं भोजन के लिए नहीं आया—क्रोध मत करना। समझे न? धन्यवाद! अच्छा.............."

डाक्टर ने रिसीवर लौट कर रख दिया। गुलाबराव से मिलने का मौका रात तक मिलने का नहीं। डाक्टर को भी विशेष जल्दी न थी। उसने जो सलाह देने की ठहराई थी वह उसके मन के अनुसार सबसे अच्छी राय थी और यदि गुलाब-राव उसे अमल में लावे तो उसका और केतकी का खोया हुआ आनन्द फिर से प्राप्त हो जायगा ऐसा उसको पूर्ण निश्चय था। चार पहर बाद भी वह सलाह गुलाबराव को दी जाय तो कोई हानि होने की नहीं—यह वे समझते थे....... .....

परन्तु भोजन समाप्त कर पान खाते खाते वे बाहर बरामदे में आये तो तार का चपरासी उनके नाम का तार लेकर आया।

उसके रोगियों में से एक को चक्कर आते थे। उसने उसके कम्पाउण्डर से तुरन्त पूने के लिए आने को कहलाया था।

अर्थात् अब गुलाबराव और उसकी भेंट होना कठिन था। उसको टेलीफोन कर बुलावे तो वह आफिस छोड़कर कहाँ गये होंगे यह उन्हें मालुम न था।

आखिर आवश्यक तार आने के कारण मुझे दोपहर की गाड़ी से पूना निश्चय लौट जाना होगा यह उसने केतकी से कहा। अपने कमरे में घंटे डेढ़ घंटे बैठकर गुलाबराव से जो कुछ उनको कहना था वह उन्होंने सविस्तार लिख दिया। वह पत्र डाक से भेजना उचित है ऐसा विचार कर स्टेशन पर जाते हुए रास्ते में डाक में छोड़ने के विचार से वह पत्र उन्होंने साथ ले लिया और तीन बजे आज्ञा लेकर उन्होंने गाड़ी पकड़ी।

दूसरे दिन रात के भोजन के उपरान्त गुलाबराव ने केतकी से कहा,

"यहाँ बरामदे में बैठने के बदले छत पर बैठें! आती हो"

"किसलिए?"

"अब चन्द्रोदय होगा; छत पर से देखें।"

केतकी "हाँ" कहेगी ऐसा गुलाबराव को निश्चय न था। इसलिए उसके उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह उसका हाथ पकड़ कर चलने लगा।

छत की दीवार का सहारा लेकर वे दोनों खड़े रहे। कृष्ण पक्ष की तृतीया का चन्द्र शान से क्षितिज के नीचे से ऊपर आ रहा था। उसके प्रकाश से शहर के दीप लज्जा के कारण पीले दिखाई पड़ने लगे थे।

कुछ देर उस सुन्दर दृश्य की ओर देखने पर गुलाबराव ने झट से केतकी का हाथ पकड़ कर कहा,

"केतकी "

उसने केवल नजर से ही पूछा, "क्या" ?

"मैं अपना एक अपराध आज तेरे सामने स्वीकार करने वाला हूँ। तू मुझे क्षमा करेगी क्या ?"

"अपराध ?"

"हाँ, अपने विवाह के पूर्व... ...." ऐसा कह कर गुलाबराव रुक गया।

केतकी उसके मुँह की ओर देखती रही। वह क्या कहने वाला है उसको मालूम न हो सका।

गुलाबराव ने फिर कहा, "जो बातें मुझे तुमसे पहले ही कह देनी थी वह मैंने गुप्त रखी। विवाह होने के पहले मैं एक स्त्री पर अनुरक्त था, उसका नाम था वत्सला। उसकी मेरी जान पहचान......"

परन्तु केतकी ने झटसे अपना हाथ उसके होठों पर रख दिया और उसने कहा,

"बस करो, किस लिए वे बातें विस्तार से कहते हो। तुम्हारा आज मुझ पर अटूट प्रेम है वह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है और इसलिए पहले तुमने किससे प्रेम किया था इस सम्बन्ध में

जानने की मुझे विशेष इच्छा नहीं है। अथवा अमुक स्त्री पर तुम्हारा प्रेम था ऐसा मुझे मालूम भी होगया तो आज के मेरे सुख में कुछ कमी आएगी ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता। अतः आप मुझसे यह सब न कहो।"

उसने उसके कंधे पर दोनों हाथ रख दिए और क्षण भर उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखकर उसने कहा,

"उलटे मुझे ही तुमसे एक बात कहनी है, वह सुनो और मुझे क्षमा कर सको तो करो।"

"क्षमा ?"

"हाँ, अपने जीवन का एक छोटा सा इतिहास मैंने आज तक तुमसे छिपा कर रखा था। वह तुम्हें मालूम पड़ा तो तुम्हारा मुझ पर प्रेम कम हो जायगा ऐसा मुझे भय था और·······"

"केतकी ! पगली !·····"

"भय पागल पन का ही है—पर है सच्चा। परन्तु उस पागल-पन के कारण मुझको अब कुछ शिक्षा मिलने वाली है और इसलिए अब मैं सब कुछ तुमसे कह देना चाहती हूँ। हमारे सूरत में रमणलाल महेता नाम का एक युवक था·····"

ऐसा आरंभ कर केतकी ने अपने रमणलाल के प्रेम की सारी बात उससे कह दी और अंत में कहा,

"कुछ भी न छिपाकर मैंने तुमसे जो जो हुआ था वह कह दिया है—अब मुझे क्षमा करो चाहे दंड दो·····"

"पगली, यह क्या कहती है !" ऐसा कहकर गुलाबराव ने उसे पास खींचकर चट से हृदय से लगा लिया।

और फिर चंद्रमा सिर पर आगया तो भी वे दोनों कमरे में नहीं गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल बहुत देर होगई तो भी बिस्तर पर प. था। (बहुत देर तक सोता रहा)।

केतकी उसके कमरे में जाकर उसका टेबल साफ करने लगी तो और कागजों में गुलाबराव के नामका एक मोटा लिफाफा उसे दिखलाई दिया। उसे फाड़ा तो उसके भीतर दो पत्र थे। एक मनसुख महेता का पत्र कल उसके नाम का आया था और दूसरा डा० रमानाथ ने जो गुलाबराव को भेजा था वह था। डाक्टर के पत्र में लिखा था......

"......तब गुलाबराव, अब केतकी को निर्भय और निश्चित करने का उपाय यह है कि तू अपनें जीवन की एक झूँठी प्रेम कथा रचकर उससे कह। अगर तुझे न सूझे तो जो मैं ही आगे लिखता हूँ वही कह देना। समझ वत्सला नाम की एक स्त्री तुम्हारी प्रेम पात्री थी, उसका तेरा परिचय बढ़ता गया और आखिर तुम दोनों में परस्पर प्रेम...... "

वह दोनों ही पत्र केतकी ने फिर ज्यों के त्यों लिफाफे में डालकर रखदिये और हँसते हँसते वह गुलाबराव को उठाने के लिए शयनागार की तरफ गई।

उससे शीघ्र बाहर लौटकर नहीं आया गया।

\+ + +

उस दिन डा० रमानाथ को एक के पाछे एक दो तार मिले एक गुलाबराव का था वह फोर्ट से किया गया था—

"रोगी एक दम चंगा होगया है। तेरा आभार कैसे मानूं।"

दूसरा केतकी के पास से आया था। वह गिर गाँव से किया गया था—

"तुम उत्तम डाक्टर हो यह तो मुझे पहले भी मालूम था, परन्तु तुम कल्पित कथा भी उत्तम लिख सकते हो यह अब समझी! तब एक आध मासिक पत्र तो निकालो।"

भाव कथा

पत्तों का बंगला

वह बालिका—
अपने ही ध्यान में मग्न थी।
पत्तियों का बंगला—
कितनी तन्मयता से बना रही थी वह—
उसके शरीर का सारा चैतन्य हाथों में और
आंखों में समा गया था मानों !
उस बंगले से वह एक रूप ही हो गई थी।

\+ \+ \+

तीन मंजिलें बन गईं—
बालिका के गालों पर गुलाबी छागई—
एक पत्ता जरा सा हिला—
कितनी दचकी वह !
उसका हृदय धक से हो गया
और तत्क्षण ही—
वह संभल गई।
और त्रिगुणित उत्साह से बंगला बांधने का काम
प्रारंभ होगया।

\+ \+ \+

छठी मंजिल वह चढा रही थी—

कितने कौशल और परिश्रम से उसने उसे बांधा था !

अब केवल एक मंजिल चढ़ानी और थी !

एक बार अभिमान से उसने बंगले की ओर देखा,

अपनी कृति पर उसके मन में क्या विचार आ रहे थे यह
उसकी आंखें बतला रही थीं।

उत्साह की देवी उसकी आँखों में तरल क्रीडा कर रही थी।

गालों पर गुलाब फूले हुए थे—

चंपाकली खिलकर अपना सौरभ सर्वत्र फैला रही थी,

आनन्द से उसका हृदय नाच रहा था !

\+ + +

सातवीं मंजिल—
दो पत्ते उसने हाथ में लिये—
एक क्षण के लिये उसने ऊपर देखा !
और—
वे दो पत्ते धड़कते हुए हृदय से ऊपर रखने वाली थी;
इतने ही में—
जोर का झोंका आया—
और
जगत् को एक उपदेश देकर वह चला गया।

दो मेघ

दोनों ही द्रुतगति से जा रहे थे, धक्का लगते ही उन दोनों ने परस्पर दृष्टि-विनिमय किया।

दोनों मेघ थे वे !

श्वेत मेघ ऊपर ही ऊपर जा रहा था; और कृष्ण मेघ नीचे नीचे आ रहा था।

श्वेत मेघ ने कृष्ण मेघ की ओर अवज्ञा की दृष्टि से देखा। क्षण भर रुक कर उसने पूछा,

"किधर चले ?"

"पृथ्वी पर; तू किधर को ?"

"स्वर्ग को !"

श्वेत मेघ उड़ने वाले विमान की भांति ऊपर ही ऊपर जाने लगा।

कृष्णमेघ टूटते हुए विमान की भांति द्रुत गति से नीचे आने लगा।

श्वेत मेघ ने अभिमान से नीचे झुक कर देखा।

कितना सुन्दर दीखता था वह कृष्ण मेघ !

और उसमें दमकती हुई दीप्तिमान् वह विद्युत् !

वह तो मानों दिव्यत्व का साक्षात्कार था !

श्वेत मेघ ने अपनी ओर निराशा से देखा।

विद्युत् की लेशमात्र भी दीप्ति उसमें नहीं थी।

उसने उत्सुकता से ऊपर देखा, शीघ्र ही स्वर्ग में प्रवेश होगा इस आनंद से उसे कृष्ण मेघ का वह दिव्य तेज विस्मृत हो गया।

थोड़े ही समय पश्चात् उसने झुककर नीचे देखा।

कृष्णमेघ कहीं भी नहीं दिखाई देता था।

केवल वसुन्धरा स्नानागार से बाहर आती तरुणी की भांति दिखलाई दे रही थी।

वृक्षलता गुदगुदाए हुए बालकों की भांति हँस रहे थे और पक्षी वृक्षों पर बैठे हुए अपने अंग झाड़ रहे थे।

श्वेत मेघ स्वर्ग के द्वार पर जा पहुँचा। उसको निश्चय था कि उसे सहज ही भीतर प्रवेश करने दिया जायगा।

परन्तु द्वारपाल उसे भीतर जाने न दे।

"भीतर एक ही स्थान रिक्त था; परन्तु अभी ही उसकी पूर्ति होगई"—उसने कहा।

अपने पीछे पीछे आने वाले अनेक श्वेत मेघों को इस श्वेत मेघ ने देखा था। वह स्मरण करने लगा—

"छिः, मुझसे आगे तो कोई भी न था!"

श्वेत मेघ घबरा गया। उसने पूछा—

"किसको मिला वह स्वर्ग का स्थान?"

"एक कृष्ण मेघ को।"—रक्षक ने उत्तर दिया।

"कृष्ण मेघ को!"

"हाँ, ग्रीष्म के ताप से उत्तापित पृथ्वी को शान्त करने में उसने अपना जीवन सर्वस्व अर्पण कर दिया!" आकाशवाणी हुई।

लालटेन

(एक शब्द चित्र)

म्युनिसिपैलिटी का लालटेन !

सन् १८५७ से वह वहाँ था !

बेचारा ! आयु में, अनुभव में, श्रेष्ठ होते हुए भी कोई उसके पास नहीं जाता था।

म्युनिसिपैलिटी का आदमी प्रतिदिन आता, दो-चार मिट्टी के तेल की बूँदें डालता और वैसे ही बिना चिमनी साफ किए जला कर चला जाता।

उस लालटेन ने कुल मिलाकर २५ मनुष्यों से अब तक अपनी सेवा कराई होगी !

× × ×

इस तरह कई वर्ष व्यतीत होगये !

—भारत परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ गया !

—महायुद्ध होगया !

—स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिये आन्दोलन हुआ !

अनेकों मनुष्यों को कारागार का दण्ड मिला और अनेक यष्टि के आघात से सीधे यमपुरी जा पहुँचे।

—और, वह बेचारा लालटेन एक पैर पर खड़ा खड़ा खिन्नमुद्रा से यह सब देख रहा था।

× × ×

संसार में अनेकानेक आविष्कार हुए !

विद्युत्-दीपकों का भी एक दिन आविष्कार हुआ !

जिधर देखो उधर विद्युत् ही विद्युत् ! बेचारे लालटेन की ओर कोई उड़ती निगाह से भी नहीं देखता था ! बेचारा आज अनाथ होगया—सफेद से वह काला हुआ ! संसार का परिवर्तन उसने अपनी खुली आँखों से देखा ! इतिहासों के न जाने कितने उलट फेरों का वह प्रत्यक्ष साक्षी बना ! अब वह अपनी आयु के अन्तिम क्षण गिन रहा था। यदा-कदा कोई पथिक उसके पास से होकर जाता तो वह अपने को कृतकृत्य समझता।

\+ \+ \+

एक वर्ष समाप्त हुआ !

\+ \+ \+

तीन वर्ष व्यतीत होगये !

\+ \+ \+

आखिर दस साल भी निकल गये !

परन्तु लालटेन अपने स्थान पर अचल खड़ा था ! पर अब वह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण होगया था। उसे कांच के घर में मकड़ियों ने अपने जाले बुने थे। कांच काजल काला—खग्रास ग्रहण—होगया था। वह लकड़ी का खंभा दीमकों की भेंट होता जा रहा था।

इस पापी संसार से--कलम संसार से--मुक्ति पाने के लिये वह बेचैन हो रहा था।

\+ \+ \+

एक दिन आकाश में भयावने काले बादल उठे! उमड़--घुमड़ कर उन्होंने सारा नभोमंडल घेर लिया! वर्षा हुई!

कितनों के ही घर गिर गये--कितने ही दीनों के घरों के घर उड़ गये।

--बिजली के दीपक भी थोड़ी देर के लिए बुझ गए!
यह दृश्य देखकर उसे हँसी आई।
इतने ही में आकाश गरज उठा-कड़-कड़-कड़-ड़-ड़-ड़!
खन-खन-न-न-न कांच टूट गया!

लालटेन का तेल इधर उधर बिखर गया और सब कुछ समाप्त होगया।

बेचारा लालटेन १८५७ के वर्ष के वीरों का अत्यन्त उत्सुकता से अभिनंदन करने के लिए महाप्रस्थान कर गया।

उसकी अंतिम अवस्था देखकर न किसी को शोक हुआ न आनन्द ही।

लेकिन आते जाते लोग इतना कहते हुए अवश्य सुनाई देते-
"बहुत दिन जिया बेचारा!"
संसार के सब कार्य पूर्ववत् चल रहे थे।

मातृभूमि की पुकार

"ताड़ी के पेड़ के नीचे पिया हुआ दूध भी लोकनिन्दा का कारण होता है। क्या यह घटना भी उसी प्रकार की न थी?"

किसी राजदूत के द्वारा राजा को उसके विश्वास पात्र सरदार के राजद्रोही होने के अनिष्ट किन्तु विश्वासनीय समाचार मिलने पर उस राजा के हृदय में जो धक्का पहुँचता है ठीक उसी प्रकार का धक्का अभी अभी इस अनिष्ट दृश्य के द्वारा मेरे चर्म चक्षुओं ने मेरे हृदय में पहुँचाया। मेरी देखी हुई घटना का ही यदि कोई दूसरा कभी मुझ से वर्णन करता तो मुझे उस बात पर तिल मात्र भी विश्वास न होता। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में मेरे नेत्र दूतों ने ही मुझे समाचार दिया था। अतएव संशय का कोई स्थान ही नहीं रह गया था। इतने दिन तक मैंने अपने मनमें जिस कल्पना को पाल रखा था वह बंदूक से गोली छूटने की आवाज सुनते ही पेड़ पर से जैसे सारे पक्षी भरभराते हुए उड़ जाते हैं वैसे ही क्षण भर में विलीन होगई।

उसका और मेरा परिचय आज से लगभग ५-६ वर्षों से था उसकी और मेरी भेट का पहला प्रसंग आज भी मुझे ज्यों का त्यों स्मरण है। वह जिस समय मेरे पास पहले पहल आया उस समय मुझे यही जान पड़ा कि कोई चीनी या जापानी

रोगी ही मेरे पास दाँतों की जांच करवाने के लिए आ रहा होगा। परन्तु उसने आते ही पहला प्रश्न किया—

"आप ही दंतशास्त्रज्ञ (डेंटिस्ट) हो क्या ?"

"हाँ," मैंने कहा।

मेरे नाम के फलक (साइन बोर्ड) पर "दाँतों का विशेषज्ञ" ऐसा अँग्रेजी में लिखा हुआ होने पर भी उसने उपरोक्त प्रश्न मुझ से क्यों पूछा यही मेरी समझ में नहीं आया, इसलिए मैं ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगा।

"तब तो हम दोनों व्यवसाय बन्धु (हमपेशा) हैं", उसने हँसते हँसते कहा।

"अर्थात् आप भी..." उसका आशय समझकर मैंने पूछा।

"हाँ, मैं भी आपकी भाँति एक दंत-वैद्य हूँ और अभी हाल में ही अपनी मातृभूमि से यहां आया हूँ। मैंने सोचा कि अपने एकाध व्यवसाय-बंधु से सलाह लेकर धंधा......"

"ऐसा ! ठीक है। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी", अत्यन्त शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए मैंने कहा। इतनी बात सच है कि उसकी इन एक दो बातों से ही वह मुझे उदार स्वभाव का व्यक्ति जान पड़ा।

"इस शहर में दंत-शास्त्रज्ञ केवल एक आप ही दिखलाई देते हैं।"

"हाँ," मैंने उत्तर दिया।

"तब मुझे इस बस्ती में बसाने में आपको कोई आपत्ति तो नहीं है।"

"नहीं जी, आपत्ति किस बात की! अपने २ व्यवसाय में निपुण होने के कारण अपने आपस में किसी प्रकार की लड़ाई होने का खटका मुझे नहीं।"

मुझे मालूम पड़ा कि मेरे इस उत्तर से उसने मुझे अत्यन्त उदार मन का मनुष्य समझा होगा। मन में विचार करने पर भी उसके आने से मुझे अपने निरुत्साह होने का कोई कारण न दिखलाई दिया, क्योंकि अपनी कार्यकुशलता पर सचमुच ही मुझे पूर्ण आत्मविश्वास था।

उसकी और मेरी भेट इस प्रकार हुई। इसके बाद शीघ्र ही उसने अपना औषधालय खोला और थोड़े ही दिनों में मुझे विश्वास होगया कि डाक्टर शैक अपने शास्त्र में निष्णात है। उस दिन से उसका और मेरा परिचय बढ़ता ही गया। किसी किसी विशेष प्रकार के रोगो के सम्बन्ध में हम दोनो परस्पर एक दूसरे की सलाह लेकर काम करने लगे।

एक दो महीने में डाक्टर शैक के जम जाने पर उसकी पत्नी और दो बच्चे चीन से आगये और उसका जीवन सुललित प्रकार से चलने लगा। आज ६ वर्ष के अनुभव से मुझे विश्वास होगया कि वह एक सज्जन और सदाचारी कुटुम्ब वत्सल नागरिक है; परन्तु मेरी इस अनुभव सिद्ध कल्पना को उपरोक्त दृश्य ने एक सुरंग लगाकर उड़ा दिया। तीन महीने पहिले ही उसने अपनी गर्भवती पत्नी को बच्चों के साथ चीन देश में उसके मायके भेज दिया था परन्तु कल तक देखी हुई बात

आज की देखी हुई घटना के समान मुझे न दिखाई दी।

+ + +

साधारण सन्ध्याकाल का समय था। मैं अपने दवाखाने में बैठा था। मेरी दृष्टि स्वभावतः सामने—ठीक सामने नहीं, परन्तु सामने की ओर ही थोड़ा सा हटकर—एक घर की ओर पड़ी। इसी घर से मेरा मित्र डा० शैक बाहर निकल रहा था और इसी कारण मुझे बड़ा धक्का पहुँचा; क्योंकि उस घर में एक चीनी वेश्या रहती थी। जो डा० शैक मुझे ५-६ वर्षों के अनुभव से सदाचारी और कुटुम्ब वत्सल जान पड़ता था आज वही एक वेश्या के घर से बाहर निकलता हुआ दिखाई दिया तो इसमें आश्चर्य हो तो क्यों नहीं। वह डा० शैक ही था। क्योंकि उसकी खास हँसी मुझे सुनाई पड़ी। वह वेश्या भी सन्ध्याकाल के समय नित्य की भाँति सजी सजाई बैठी थी। वह हँसती थी और मेरा मित्र डाक्टर भी हँसता था। उससे विदा लेते हुए डा० शैक को जेब में कुछ नोट डालते हुए मैंने देखा। एक बार समझा कि कदाचित् वह उसके दाँत देखने के लिए उसके पास गया होगा। परन्तु तुरन्त ऐसी शंका हुई कि ठीक उसका धंदा शुरू होते समय ही यह वहाँ क्यों गया। वस्तुतः और समय उसको विशेष सुविधा होती। यह पक्का निश्चय कर लिया कि मेरा मित्र उसके पास ठीक उसी उद्देश्य से गया है जिस काम से और लोग जाते हैं। मेरी इस धारणा को पुष्टि मिली उसकी पत्नी की अनुपस्थिति के कारण। मेरा मित्र तुरन्त मेरे मन से उतर गया उसके प्रति मेरे मन में

तिरस्कार की भावना जाग्रत होने लगी। ऐसा मनमें आया कि तुरन्त उसके पास जाकर उसको समझा बुझा कर खूब सावधान कर दूँ। परन्तु फिर उसको समझाने की अपेक्षा उससे संबंध-विच्छेद करना मुझे विशेष उपयुक्त जान पड़ा। डा० शैंक के उस घर से जाने के उपरान्त वह वेश्या और भी सजने लगी मानो इतना अच्छा ग्राहक मिलने के कारण उसको नया हुस्न चढ़ गया हो।

विवाहित मनुष्य का ऐसा आचरण कहाँ तक उचित है इसी पर मैं विचार करने लगा। कल यदि डा० शैंक की पत्नी को यह बात मालूम हो जाय तो वह क्या समझेगी और उसकी क्या स्थिति होगी इसका काल्पनिक चित्र मेरी आखों के सामने घूमने लगा। तब उसकी भलाई के लिए ही सही, तुरन्त जाकर शैंक को इस आदत से लौटाना चाहिए इस विचार से मैं कुर्सी पर से उठा। औषधालय की देहली से उतरते उतरते कुछ दूर पर मेरा परिचित एक दूसरा चीनी गृहस्थ आता हुआ दिखाई दिया। नित्य की भाँति उसके दाहने कंधे पर बेत की एक छड़ी थी। उसी छड़ी में तरह तरह की 'टाइयाँ' लटकी हुई दिखाई दे रही थीं। बाएँ कंधे पर पीठ से बंधी हुई कपड़ों की अच्छी खासी गठरी थी और बाँए हाथ पर चीनी रेशमी कपड़ों के दो तीन टुकडे थे। इस कष्टमय दशा में वह बेचारा चीनी आ रहा था। कपड़े वाला भी बहुत दिनों का परिचित था क्योंकि उसके पास से आज तक बहुत बार कपड़ों के थान और सिले हुए कपड़े—खास कर एक दो बार सोने का गाउन और

पतलून—खरीदे थे। पेट के खातिर देश से इतनी दूर आकर गर्मी और सर्दी झेलते हुए इतना कष्ट उठाते देख कर मुझे उसके प्रति सदा अत्यन्त सहानुभूति होती थी। इसीलिए उसको देखते ही मैं आखरी सीढ़ी पर रुक गया जिससे उसकी निगाह में न पड़ूं।

इस चीनी गृहस्थ को देखते ही फिर थोडी ही देर पहले घटी हुई डा० शैक के संबंध की उस घटना का स्मरण हो आया। कुछ भी हो, परन्तु उस चीनी मनुष्य के प्रति भी मेरे मन में अकारण तिरस्कार होने लगा। संयोग भी ऐसा ही पड़ा कि इस तिरस्कार का समर्थन करने के लिए उसी बीच एक और घटना हो गई। वह दिन ही मानों एक के बाद एक आश्चर्यकारक घटनाओं का ही दिन था। डा० शैक की उपरोक्त आश्चर्य जनक घटना घटते घटते ठीक उसी तरह की दूसरी घटना हो गई मानों वह पहले से सामने तैयार ही थी, वह चीनी कपड़े वाला भी सीधा न आकर ठीक उसी घर में घुसता हुआ मुझे दिखाई पड़ा जहां से अभी थोड़ी देर पहले डा० शैक बाहर निकला था। उक्त घर दोष पूर्ण है इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं था। इसलिए जिस कारण मैंने यह अनुमान किया था कि डा० शैक वहां दांतों की परीक्षा करने के लिए नहीं गया ठीक उसी कारण यह मानते हुए भी मुझे संकोच नहीं हुआ कि यह कपड़े वाला भी उस समय कपड़ा बेचने के लिए वहां नहीं गया है। वह वेश्या अपने धंधे के समय इस प्रकार का सौदा करेगी ऐसा मुझे असंभव जान पड़ा

डा० शैंक के पास जाने का मेरा इरादा इस घटना के कारण एकाएक बदल गया और मैं फिर कुर्सी पर जाकर पूर्ववत् बैठ गया—बस सिर्फ पूर्ववत् बैठना ही भर समझ लीजिए। पांच मिनट पहले केवल डा० शैंक मुझे तिरस्कारणीय जान पड़ा था, परन्तु अब चीनी समाज के इन दो व्यक्तियों के व्यवहार के कारण मुझे उस जाति के ही प्रति घृणा हो गई। मन में मैं एक बार इस कपड़े वाले को क्षमा करने को तैयार हो गया था, परन्तु डा० शैंक का व्यवहार तो किसी तरह भी मैं क्षमा करने के लिए तैयार न था। डा० शैंक चीनी समाज में उच्च श्रेणी का सुसंस्कृत व्यक्ति माना जाता था। आखिर मैंने भी सोचा कि अपने को उस चीन राष्ट्र से और उस समाज से करना क्या है। वे कैसा भी आचरण क्यों न करें। हम तो अपने सामने हुई बात को मन में हुई न हुई एकसी समझ कर चुप बैठें। पर स्वस्थ बैठा भी तो न गया—इसलिए कुछ समयपूर्व आए हुए मेज पर पड़े "वर्तमान—समाचार" को मैंने उठा लिया, मुखपृष्ट पर ही मोटे अक्षरों में उसमें शीर्षक था।

"चीन पर जापान का असफल आक्रमण"

शीर्षक के नीचे के स्तम्भ में आक्रमण के संबंध में विस्तार समाचार दिया हुआ था। इस आक्रमण के कारण चीनी लोगों को आर्थिक हानि और शारीरिक कष्टों का उसमें हृदय द्रावक वर्णन किया गया था। वर्णन पढ़ते ही न मालूम कैसे मेरे मुख से ये शब्द निकल पड़े—"ये चीनी लोग इसी लायक हैं।"

इसके बाद मुझे इस पर अधिक विचार करने का अवकाश नहीं मिला क्योंकि एक के बाद एक मेरे रोगी आने लगे और एक तरह से यह बहुत अच्छा हुआ—ऐसा मुझे मालूम पड़ा। विचार से इस चमत्कारिक ढंग से यह संध्याकाल बीता।

\+ \+ \+

उस संध्या काल के बाद एक दिन बीत गया और तीसरा दिन आया। इस बीच मैं शेक के पास नहीं गया। लेकिन वह मेरे पास घर में और औषधालय में चार पांच बार आकर लौट गया। इस बात का पता उसके द्वारा कहलाए गये जवाब से मुझे लग गया था। परन्तु मैंने उसके साथ बिलकुल संबंध छोड़ने का निश्चय कर लिया था इस लिए उसके जवाब की रत्ती भर भी परवाह न की।

दवाखाने में जाने को मुझे अभी एक घंटा बाकी था। मैं अपने कार्यक्रम के अनुसार स्नान समाप्त कर थोड़ा सा फलाहार कर आराम कर रहा था।

"डाक्टर साहब!" इतने ही में मुझे पुकार सुनाई पड़ी।

मैं समझ गया कि वह पुकार, उस चीनी कपड़े वाले की है। इस लिए मैंने जवाब नहीं दिया। एक दो मिनटों में ही वह फाटक खोलकर भीतर आ गया। मस्तक पर लकीरों के जाल में मैंने उसकी आकृति पकड़ी और तिरस्कार पूर्वक कहा।

"क्या है जी!"

"कुछ नहीं डाक्टर साहब," उसने कहा।

"कुछ थोड़ा सा कपड़ा बच गया है, उसे आप ले लिजिए"

"मुझे तुम्हारे कपड़े की जरूरत नहीं—"

नित्य जिस कोमलता के साथ मैं उससे बातचीत करता था आज उसका एकदम लोप हो गया था। परसों की घटना के बाद से उसकी ओर देखने का मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया था।

"परन्तु डाक्टर मुझे इस समय पैसे की गरज पड़ी है इस लिए मैं कपड़ा कम कीमत में ही दे दूँगा।"

"इतनी गरज है क्या आपको ?"

"हाँ डाक्टर ! और इसीलिये कुछ घाटा उठाकर कपड़ा बेच रहा हूँ।"

मैंने कुछ व्यंग से कहा, "पैसे कहाँ उड़ाने के लिये चाहिए।"

"कुछ भी कहिये डाक्टर साहब ! परन्तु इतना बचा हुआ कपड़ा तो ले ही लीजिये। मैं बहुत भरोसे से आपके पास आया हूँ कि आप लेंगे ही। और कपड़ा मैं बेच चुका हूँ और इतना ही बच गया है।"

"और कपड़ा जहाँ बेचा है वहीं इसे भी क्यों नहीं बेच देते?"

"जितना बिका उतना बेच ही लिया है। बचा हुआ तुम्हीं न ले लो।"

"मैंने एक बार कह दिया कि मुझे तुम्हारा कपड़ा नहीं चाहिये।

"परन्तु डाक्टर मैं आपको फिर तकलीफ देने के लिये नहीं आऊँगा।"

"क्यों, कहाँ जारहे हैं आप ?"

"मै देश से बाहर जारहा हूँ।"

"देश-बाहर ! कहाँ !" मैंने पूछा।

"बहुत दूर जारहा हूँ और फिर सचमुच मैं आने का नहीं अब तो लेलो न कपड़ा।"

'अच्छा, क्यों जी अब तो आप जा ही रहे हैं तो क्या आपसे एक बात पूछूँ।"

"पूछिये महाशय, परन्तु पहले कपड़ा लेवो फिर पूछो।"

"अच्छा देखो, एकदम ठीक ठीक कहोगे न?"

"एकदम सच कहूँगा", उसने कहा।

तब मैंने वे सब कपड़े मोल लेलिये। वे सब मुझे बहुत ही कम कीमत में मिल गये। सचमुच ही मुझे इस पर आश्चर्य होने लगा। कपड़ा लेकर मैंने उसे पैसे दे दिये।

"हाँ डाक्टर! अब पूछिये, क्या पूछना है आपको?" पैसे हाथ में लेते हुए वह बोला।

"तो फिर परसों सायंकाल आप कहाँ कहाँ गये? मेरे औषधालय क आसपास आये थे।"

"डाक्टर साहब, सिर्फ इतना ही प्रश्न आप मत पूछिये।"

"नहीं, मुझे इसी प्रश्न का उत्तर चाहिए" मैंने दृढ़ता से पूछा।

"तो मैं ता इसका उत्तर देने से रहा। आपको मेरे बीच में पड़ना नहीं शोभता। जाता हूँ मैं अब।"

इतना कहकर वह जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाते हुए चलागया, परसों की घटना अब मेरे लिये केवल संबंध मात्र न रह कर वास्तविक थी, इसमें अब मुझे पूर्ण विश्वास होगया। और सायंकाल को वह फिर उस घर में दिखलाई पड़ेगा ऐसा मैंने अनुमान लगाया। वास्तव में मुझे आर्थिक दृष्टि से किसी प्रकार का घाटा हुआ हो यह बात न थी। परन्तु मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैंने अनुचित स्थान पर उदारता दिखलाई है। इस प्रकार मैं जरा-सा बेचैन सा होगया और उस बेचैनी को दूर करने के लिये मैं तुरन्त औषधालय को चला गया।

उस दिन दवाखाने में चार घण्टे कैसे निकल गये इसका मुझे पता नहीं चला—एक के बाद एक इतने रोगी वहाँ आये।

इस कारण रोज १२ बजे बंद होने वाला दवाखाना आज १ बजे तक खुला रहा। १ बजे दवाखाना बंद कर मैं घर आया। घर आने पर कपड़े उतार कर भोजनागार में चला गया।

"सुना क्या, वह चीनी डाक्टर पहले साढ़े बारह बजे आकर लौट गया....." मेरी पत्नी ने कहा।

"हाँ, आया होगा!" मैंने लापरवाही से कहा।

"वह कहता था कि उसको आपसे कुछ जरूरी काम है।"

"होगा तो होने दो। और फिर आयगा यदि काम होगा तो।"

"बेचारा दो दिन से बराबर यहाँ आने का कष्ट उठाता है। क्या आपका उससे कुछ वैमनस्य होगया है" उसने पूछा।

"हाँ, मैं आजतक उसे एक सज्जन पुरुष समझता था। परन्तु उसमें सज्जनता का नाम भी नहीं। और वह अपना चीनी कपड़े वाला भी जितना गरीब दिखलाई देता है उतना है नहीं, समझी? बड़े ठग हैं ये धूर्त।"

"बिल्कुल सच कहते हो क्या? क्यों क्या बात है"

"कहूँगा कभी। बहुत बड़ा इतिहास है"

भोजन के उपरान्त मैंने आराम किया और ठीक तीन बजे मैं उठकर बैठ गया। आँखों में नींद अब भी झोंका ले ही रही थी। इतने में फाटक के दरवाजे पर एक टेक्सी आकर रुकगई। उसमें से डा० शेक नीचे उतरा और जहां मैं बैठा हुआ था उधर की ओर आने लगा। उसके पीछे पीछे वह चीनी कपड़े वाला भी उतरकर आने लगा। टैक्सी में बहुत-सा सामान भरा हुआ मालूम पड़ता था और उसमें एक और स्त्री भी दिखलाई पड़ी, परन्तु वह स्त्री दूसरी ओर बैठी थी—इसलिये वह कौन है यह मुझे नहीं दिखलाई दिया। लेकिन वह कौन होगा इसका अनुमान मैंने कर लिया था। दोनों ही 'शार्ट्स' पहने हुए थे। इस कारण उनके बाहर जाने की तैयारी का अनुमान हुआ।

"कहिए डाक्टर साहब, क्या हो रहा है ?" सामने की कुर्सी पर बैठते बैठते डा० शौक ने मेरी ओर देखकर कहा।

"कुछ नहीं यों ही बैठा था," मैंने रुखाई से उत्तर दिया।

"नमस्कार डाक्टर !" उस कपड़े वाले ने भी दूसरी कुर्सी पर बैठते बैठते कहा।

"क्यों जी, मेरे दो दिन यहाँ आने की सूचना आपको मिली या नहीं ?" शौक ने पूछा।

"नहीं मिली।" मैंने कहा।

"झूँठ बोलते हैं आप !"

"होगा झूँठ ! पर मेरा झूँठ बोलना आपके पाप की अपेक्षा विशेष भयंकर नहीं ?" मैंने डाटकर कहा।

"यानी आपको मेरा जवाब मिला तो !"

"हाँ, मिला।"

"तब क्यों नहीं आये तुम मेरे पास ? नाराज हो क्या मुझ से।"

"जिसको गरज हो वह जावे दूसरे के पास !"

"ऐसा ! हाँ ठीक है, इसीलिए तो आज मैं आया हूँ तुम्हारे पास ? मुझे आपसे एक महत्वपूर्ण काम है।"

"क्या काम है वह ?"

"यह देखो। कल से मैंने अपने सारे रोगियों से आपके ही औषधालय में आने के लिये कह दिया है। तब........."

"और बाहर की टैक्सी में बैठा हुआ आपका कोई रोगी ही है क्या ?"

मैंने बीच में ही टोककर कहा।

"नहीं, वह स्त्री कोई रोगी नहीं।"

"तब वह स्त्री कौन है ? सचसच कहिए।"

"वह एक वेश्या है।"

"कब से इस प्रकार का चलन शुरू किया है आपने ! परसों संध्याकाल से न ?"

"आपने मुझे देख लिया है तब !"

"आपको ही नहीं देखा है—इस कपड़े बेचने वाले को भी देखा है। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि, डाक्टर, आखिर आप भी ऐसा ...."

"ठीक है। आपकी क्या गलती है उसमें ? ताड़ी के पेड़ के नीचे बैठकर कोई यदि दूध पिये तो भी लोग यही समझेंगे कि उसने शराब ही पी है और यह बहुत ही स्वाभाविक भी है। खैर इस बात को तो जाने दो परन्तु मुझे बुरा तो इस बात पर लगा है कि आपको मुझ पर संशय हुआ" डाक्टर शैक ने शान्तिपूर्वक कहा।

"संदेह क्यों न हो ?"

"इसीलिए नाराज हो न ? और इसीलिये आप मेरे पास नहीं आये। अब आप मेरा तिरस्कार करते होंगे। खैर कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि अब आपका मेरा बहुत दिनों का साथ .."

"अर्थात् ! कहते क्या हो आप !" मुझे जरा आश्चर्य सा होने लगा

"अर्थात् ! अब मैं जाने वाला हूँ।"

"और मैं भी जाने वाला हूँ, डाक्टर साहिब", कपड़े वाला बीच में ही बोल उठा।

"हम अब जाने वाले हैं बहुत दूर......"

"यानी कहाँ ?"

"यानी ? आपके यहाँ वर्तमान पत्र आता है न ?" डा. शैक ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा।

"हाँ तो !"........

"फिर भी आप नहीं समझे कि हम कहाँ जाने वाले हैं !"

"अच्छा ! तो आप भी वहीं जा रहे हो !"

"मित्र, हमारे राष्ट्र पर—चीन देश पर—जापान ने कितनी चढ़ाई की है वह आपको क्या मालूम नहीं !"

"हाँ, हाँ ! तो क्या आप भी चीन जाने वाले हैं !" मैंने आश्चर्यातिरेक से कहा ।

"हाँ, वहीं ।"

'बिलकुल सच कहते हो क्या !"

"बिलकुल ठीक ! आपको क्या मालूम पड़ता है कि हम मातृभूमि से इतने दूर हैं कि हमें उसकी पुकार सुनाई ही नहीं पड़ता । मित्र, आज एक सप्ताह होगया है । मेरे प्राण यहाँ तड़फड़ा रहे हैं । देश के संकट के समय आराम की नींद सोना मेरे हृदय को स्वीकार नहीं । चार पाँच दिन रोगियों को किसी तरह औषधि देता था । रोगी को देखा कि मेरे देश के रणभूमि में घायल वीर सिपाही मेरी आंखों के सामने आ गए। मानों बेकार यहाँ का अन्न खाकर कीड़ा लगे हुए दांतों को देखने की अपेक्षा खून से कुल्ला करते हुए सैनिकों के दाँत दिखने चाहिए। मेरे समवयस्क स्नेही नातेदार युद्ध में भर्ती हुए हैं। अजी, यह दूसरों की दृष्टि में क्षुद्र कपड़ेवाला, यही देखा, कल तुमको कम कीमत में कपड़ा बेचकर..............मातृभूमि की सेवा के लिए उत्सुक है। और मैं भी इसी आन्दोलन के संबंध में दो तीन दिन से और और उद्योग में था।

"शैक, मित्र शैक, आप दोनों भी........"

"हां, और इसीलिये कल से मैं अपने रोगी तुम्हारे हवाले करता हूँ, और इसके अतिरिक्त एक महत्व की बात है यानी..."

"कौनसा है वह महत्वपूर्ण काम ?........"

"वह बाहर टैक्सी में बैठी हुई स्त्री—"

"वही स्त्री ना ?" मैंने कहा।

"वह स्त्री नहीं, वह तो वेश्या है! वेश्या!! क्या समझते हो!" शैक जरा आवेश से बोलने लगा।

"हाँ, वह वेश्या मेरे दवाखाने के सामने ही रहती है।" मैंने भी कह दिया।

"तो वही वेश्या!—समाज घृणित पतित शूद्र पदार्थ! मलिन एवं विशाक्त जीवाणु!—वह आपके पास १०-१५ दिनमें आकर पैसे देता जायेगी। परसों संध्याकाल ही उसने मुझे बहुत से पैसे दिये और वह तुम देख ही चुके हो। ताड़ी के पेड़ के नीचे मैंने जो दूध पिया है यह वही है। तब वह स्त्री जो पैसे तुमको लाकर देगी उन्हें तुम मेरे बतलाये हुए बैंक के मार्फत भेजते जाना। उन पैसों के मुझे मिलने की व्यवस्था पहले ही हो गई है। तुम्हें मालूम है कि इन पैसों का क्या होगा?"

"क्या?" शून्य मन से मैंने पूछा।

"इसके विलास के द्वारा, इसके हीनकर्म द्वारा प्राप्त पैसों से उधर चीन में सिपाहियों के कपड़े, औषध, पथ्य, अन्न आदि का भंडार एकत्र करके चीन की सहायता की जायगी। इसको इधर मिले हुए प्रत्येक पाई पैसे के द्वारा चीन देश पर आये हुए इस शत्रु सैन्य का निवारण करने में सहायता मिलेगी। और क्या कहूँ मैं आपसे मित्र?"

डाक्टर शैक इस प्रकार बोलते थे मानो उनके शरीर में किसी शक्ति का संचार हुआ हो। उसके एक एक शब्द से मुझे तीन दिन अकारण उसके प्रति संदेह करने के कारण लज्जा हुई।

'और डाक्टर साहब, मुझ से बहुत सा कपड़ा इस वेश्या ने चौगुनी कीमत में खरीदा उस दिन सायंकाल।"

कपड़े वाले ने भी खोचा मार कर कहा।

"तब, डाक्टर, करोगे मेरे ये दोनों काम नियम से? देखा अब आप से फिर कभी भेंट होगी भी या नहीं यह कौन कह सकता है?"

"हाँ, यह तो जान बूझकर मृत्यु का निमंत्रण है।"

"छिः छिः! ऐसा अशुभ नहीं बोलना चाहिए। यह मृत्यु का निमंत्रण नहीं—यह मंगल-समय है। स्वातंत्र्य प्रेम की यह महायात्रा है! और हम इस यात्रा के पथिक हैं। अच्छा, अब मुझे अधिक अवकाश नहीं। हम जाते हैं। गाड़ी छूटने में १० मि. हैं। तो फिर आप मेरे ये काम करोगे न?"

"हाँ अवश्य करूँगा। पवित्र कर्तव्य समझकर करूँगा।"

"शाबास मित्र, अब मैं निश्चित होकर जाऊँगा।"

वे दोनों कुर्सी पर से उठे। मैं उन्हें पहुँचाने के लिये टैक्सी तक आया। आजतक त्याज्य जान पड़ने वाली वह चीनी वेश्या, मुझे आज सचमुच मंगला मुखी सी दिखलाई दी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका समस्त पाप धुल गया है और आज वह एकदम पवित्र होगई है। उसके हृदय की देश प्रेम की ज्योति मुझे इतनी उज्ज्वल प्रतीत हुई कि उसके संबंध में पहले जो बुरी धारणा मेरे मनमें संचित थी वह सब आज दूर होगई।

"तो डाक्टर, देती जाऊँ न आपको पैसे लाकर?" उस वेश्या ने कहा।

और उतने ही में वह टैक्सी चलने लगी। वे तीनों ही मुझे सचमुच यात्री मालूम पड़े। और उस दिन से संध्याकाल को दवाखाने से मैं जब कभी उसको विशेष सजा हुआ देखता तब मैं उसकी उस व्यवसाय में सफलता के लिए कामना करता। क्यों कि उसकी आमदनी का उपयोग उसके देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए होता।

नीति के पाठों के स्तुति पाठक कितना ही कहें कि "अनीति कारक मार्ग से रक्षित स्वतंत्रता किस कामकी है" परन्तु मैं तो निरंतर जबतक उसकी प्राप्ति का उपयोग इस तरह से होगा तब तक उसके धंधे में उसकी सफलता की ही कामना करूँगा, यह निश्चित है।